आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

: २३ सितम्बर–२००४ अंक : ९

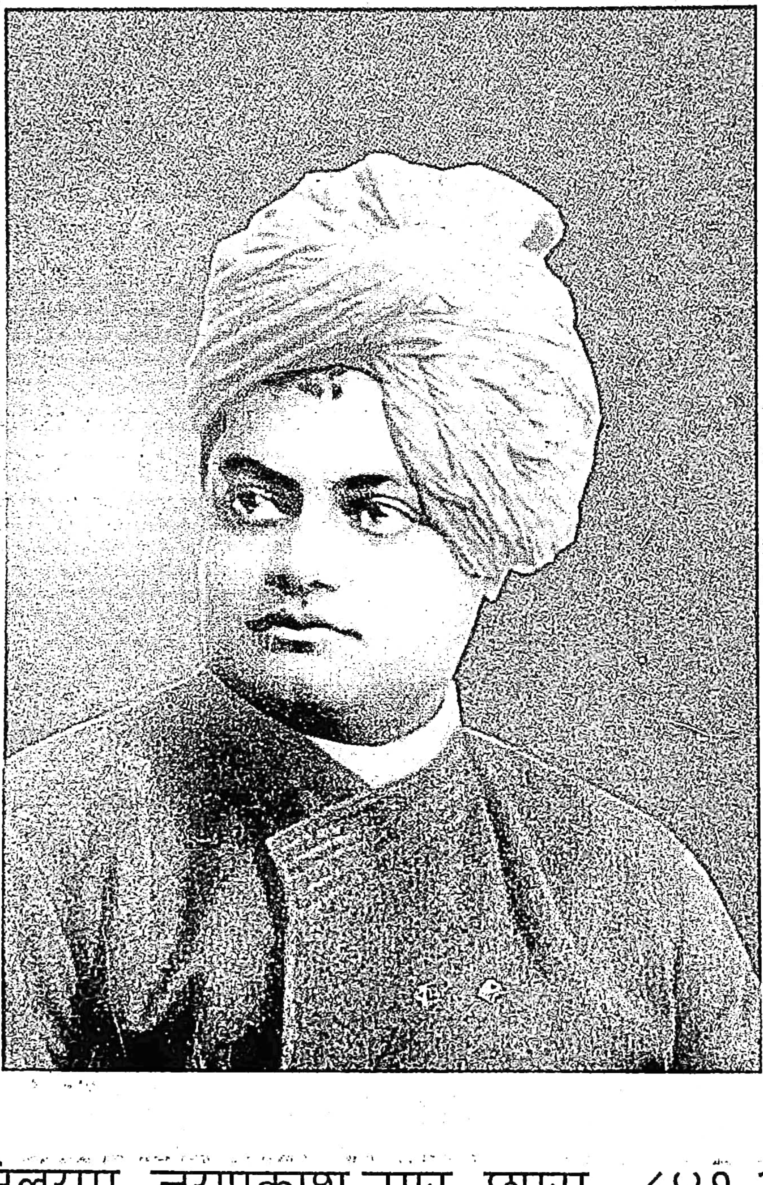

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

नम्र निवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार–८४१३०१

दूरभाष : ०६१५२-२२०७३८

श्रीरामकृष्ण देव के सोलह संन्यासी शिष्यों में मात्र एक ही बंगभूमि के बाहर के थे ओर उन्हें अपनी माटी में जन्म देने का श्रेय छपरा को प्राप्त हुआ। स्वामी अद्भुतानन्द नाम से विख्यात ये संन्यासी लाटू महाराज के नाम से परिचित हैं। इनके माता-पिता समाज के अत्यंत पिछड़े वर्ग के थे। शैशवावस्था में ही माता-पिता के देहान्त हो जाने के कारण उन्हें बाल-श्रमिक के रूप में अपने चाचा के साथ कोलकाता जाना पड़ा।

दैवी कृपा से किशोर लाटू अभूतपूर्व आध्यात्मिक साधना के शिखर-पुरुष, सर्वधर्म समन्वय की प्रतिमूर्ति युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आए। इन दोनों का मिलन भारत ही नहीं, विश्व के आध्यात्मिक जगत् के लिए एक ऐतिहासिक स्वर्णिम संगम था। यह केवल एक परम गुरु से एक निष्ठावान शिष्य का मिलन नहीं, वरन् भारत की एक युग-परिवर्तनकारी घटना थी, मानो भावी भारत की जाति-भेद विहीन सामाजिक संरचना का अद्भुत संकेत था।

श्रीरामकृष्ण के निदेशन में गहन आध्यात्मिक साधना कर इस निपट ग्रामीण, निरक्षर युवक ने समाधि के उच्चतम सोपान पर ब्रह्मोपलब्धि कर आध्यात्मिक जगत में एक अद्वितीय, अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया। लाटू महाराज की इस अनोखी उपलब्धि को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने ही उनका नाम स्वामी अद्भुतानन्द रखा।

बिहार की मिट्टी धन्य है जिससे भगवान बुद्ध, महावीर जैन, सीता माई आदि के नाम जुड़े हैं। यह भूमि एक बार फिर से लाटू महाराज सरीखे सन्त को जन्म देकर धन्य हो गई है। आज स्वामी अद्भुतानन्द के जीवनचरित पर बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्यान्य देशी-विदेशी भाषाओं में अनेक ग्रन्थों एवं लेखों का प्रकाशन हो रहा है। आध्यात्मिक जगत् में छपरा जिले को एक विशिष्ट गरिमा प्राप्त हुई है एवं वह दिन दूर नहीं जब छपरा एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल में परिवर्तित हो जाएगा।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ ने रामनवमी २००३ को छपरा स्थित रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम का रामकृष्ण मिशन आश्रम के रूप में अधिग्रहण किया। आशा की जाती है कि रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा अपने पूर्ण सामर्थ्य से लाटू महाराज की स्मृति अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ समाज-कल्याण के कार्यक्रमों में स्वयं को समर्पित कर देगा।

हमारी तात्कालिक आवश्यकताएँ–

१. संत-निवास हेतु-------१० लाख रुपये

२. दरिद्रतम छात्रों के अध्यापनार्थ एक शेड हेतु ३ लाख रुपये

३. चिकित्सालय के लिए दवा एवं उपकरणों के हेतु-------१० लाख रुपये

४. अतिथि निवास के लिए--------३ लाख रुपये।

कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने के लिए हमें धन-बल एवं जन-बल की आवश्यकता है, जिसका अभी नितान्त अभाव है। आपसे विनम्र निवेदन है कि आप हमारे कार्यों में सहायता प्रदान करने हेतु सहानुभूतिपूर्वक आगे आएँ। इस आश्रम को दिये गये दान आयकर की धारा ८० (जी) के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं। चेक या ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार' के नाम से ऊपर दिए गए पते पर भेजें।

भवदीय

स्वामी मुनीश्वरानन्द

सचिव

॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

सितम्बर—२००४

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २३

अंक ९

वार्षिक ६०/— एक प्रति ६/—

आजीवन ग्राहकता शुल्क

(20 वर्षों के लिए) ७००/—

संरक्षक-योजना

न्यूनतम दान—१०००/—

—: सम्पादकीय कार्यालय :—

विवेक-शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर

छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)

दूरभाष : (०६१५२) २३२६३९

संस्थापक प्रकाशिका

स्व० श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

१.	श्रीरामकृष्ण ने कहा है	३
२.	श्रीरामकृष्ण (भजन) —स्वामी आत्मानन्द	४
३.	ऊँ : प्रतीक —स्वामी विवेकानन्द	५
४.	धर्म तथा धार्मिक जीवन —स्वामी वीरेश्वरानन्द	७
५.	धर्म के स्वरूप : श्रीकृष्ण भगवान —डॉ० रवीन्द्र नागर	१३
६.	गोस्वामी तुलसीदास —स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१४
७.	माँ सारदा—लौकिक और अलौकिक —श्रीमती विनोदिनी कृष्ण	१७
८.	कर्म-साधना (कविता) —डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण	२०
९.	स्वामी विशुद्धानन्द जी के पत्र	२१
१२.	समाचार एवं सूचनाएँ	२३

विवेक शिखा

के आजीवन सदस्य

२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा सारण (बिहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक जमशेदपुर (झारखण्ड)
२०७. सचिव, रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०८. सचिव, रामकृष्ण मिशन, राँची (बिहार)
२०९. श्रीमती शुभा कामत-मुम्बई (महाराष्ट्र)
२१०. श्री बी. एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२११. श्री कैलास खेतान, नगाँव (आसाम)
२१२. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१३. श्री संजय जिंतुरकर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
२१४. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता
२१५. श्री नन्द लाल टाँटिया, उत्तर काशी
२१६. श्रीमती मंजु गुप्ता, वाराणसी
२१७. श्रीराम कुमार शुक्ला, बाराबंकी
२१८. डॉ० दिनेशचन्द्र पाठक, चम्पावत
२१९. श्रीमती वसन्ती शर्मा, ऊधम सिंह नगर
२२०. श्रीमती विद्या मुरारी, पिथौरागढ़
२२१. श्रीमती गीता मर्थला, नैनीताल
२२२. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर
२२३. श्री डी० डी० शर्मा, भोपाल

विवेक शिखा के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर **'विवेक शिखा'** के 'स्थायी कोष' की योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

व्यवस्थापक

संरक्षक सूची

१.	श्रीमती कमला घोष	– इलाहाबाद	–३,०००/-
२.	श्री नन्दलाल टाँटिया	– कोलकाता	–१,०००/-
३.	श्री हरवंश लाल पाहड़ा	– जम्मूतवी	–१,०००/-
४.	श्रीमती निभा कौल	– कोलकाता	–१,०००/-
५.	डॉ. सुजाता अग्रवाल	– कर्नाटक	–१,०००/-
६.	श्रीमती सुभद्रा हाकसर	– कोलकाता	–५,०००/-
७.	स्वामी प्रत्यगानन्द	– चेन्नई	–१,०००/-
८.	श्रीमती रंजना प्रसाद	– रायपुर	–१,०००/-
९.	श्री जी.पी.एस. धिमीरे	– काठमांडू	–१,०००/-
१०.	डॉ० निवेदिता बक्शी	– कुर्ला पं०मु०	–१,०००/-
११.	श्री उमापद चौधरी	– देवघर	–१,०००/-
१२.	श्री शत्रुधन शर्मा	– फतेहबाद	–१,०००/-
१३.	श्री प्रभुनाथ सिंह	– माने, बिहार	–१,०००/-
१४.	श्री रामकृष्ण वर्मा	– कोटा राजस्थान	–१,०००/-
१५.	श्री कीर्त्यानन्द झा	– पटना, बिहार	–१,०००/-
१६.	श्री रामअवतार चौधरी	– छपरा, बिहार	–१,०००/-
१७.	डॉ. निधि श्रीवास्तव	– जमशेदपुर	–१,०००/-
१८.	श्री सतीश कुमार वंशल	– दिल्ली	–१,०००/-
१९.	श्री उदयवीर शर्मा	– खंडवाया उ.प्र.	–१,०००/-
२०.	श्री आर. बी. देशमुख	– पुणे	–१,००१/-
२१.	कुमारी उषा हेगड़े	– पुणे	–१,०००/-
२२.	श्री राजकेश्वर राम	– पटना, बिहार	–१,०००/-
२३.	डॉ. (श्रीमती) नीलिमा सरकार	– कोलकाता	–१,०००/-
२४.	श्री एन.के. वर्मा	– मुम्बई	–१,०००/-
२५.	श्री अशोक राव	– छिंदवारा	–१,१००/-
२६.	श्री मोती लाल खेतान	– पटना	–१,०००/-
२७.	डॉ. प्रदीप कुमार बक्शी	– कोलकाता	–२,०००/-
२८.	डॉ. शरत् मेमन	– मुम्बई	–१,०००/-
२९.	श्री रामकृष्ण आश्रम	– मैसूर	–१,०००/-
३०.	श्रीमती छविराज सिंह	– गाजीपुर	–१,०००/-
३१.	श्री पंकज कुमार	– अ० प्रदेश	–१,०००/-
३२.	श्री ए० डी० भट्टाचार्य	– भद्रकाली	–१,०००/-
३३.	श्रीमती सरला बेन पाठक	– बड़ोदरा	–१,०००/-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
हिन्दी मासिकी

वर्ष–२३ सितम्बर–२००४ अंक–९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ॥

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

तुम्हारे भीतर जो भाव हो, बाहर तुम्हारी वाणी भी उसी के अनुसार होनी चाहिए । मन और मुख एक होना चाहिए । यदि केवल तुम मुख से कहो कि 'भगवान् मेरे सर्वस्व हैं' पर मन ही मन संसार को ही सर्वस्व मानो तो इससे तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा ।

(२)

जो जैसा चिन्तन करता है वह वैसा ही बन जाता है । भ्रमर का चिन्तन करते-करते झींगुर भी भ्रमर ही बन जाता है । इसी प्रकार सदा सच्चिदानन्द का चिन्तन करते रहने से मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप ही हो जाता है ।

(३)

चन्दामामा सभी बच्चों के मामा हैं । इसी तरह भगवान् भी सभी के हैं । उन्हें पुकारने का सभी को अधिकार है । जो कोई उन्हें पुकारता है वह उनके दर्शन प्राप्त कर धन्य हो जाता है । यदि तुम उन्हें पुकारो तो तुम्हें भी उनके दर्शन होंगे ।

(४)

ईश्वर सब के भीतर हैं, परन्तु सब जन ईश्वर के भीतर नहीं हैं; इसी लिए उन्हें इतना दुःख भोगना पड़ता है ।

(५)

पत्थर पर कीला ठोकने से वह अन्दर नहीं जाता, परन्तु जमीन में आसानी से चला जाता है; इसी प्रकार सत्पुरुषों का उपदेश बद्धजीवों के हृदय में प्रवेश नहीं कर पाता, किन्तु विश्वासी व्यक्तियों के हृदय में सरलता के साथ गहराई तक चला जाता है ।

❑

श्रीरामकृष्ण

(श्रीरामकृष्णदेव पर रचित बंगला गीतों के अनुवाद)

श्रीमत् स्वामी आत्मानन्द
पूर्व सचिव
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर

(प्रेमानन्दे मन रे गाओ रामकृष्ण नाम--------का अनुवाद)

प्रेमानन्द से मन रे गाओ रामकृष्ण नाम ।
भजो रामकृष्ण नाम, जपो रामकृष्ण नाम,
नाम-सुधा पी के रहो मत्त अविराम ॥ १ ॥

कामारपुकुर बना पुण्य ब्रजधाम,
वहाँ सखा ले के प्रभु ने की लीला अविराम ।
(मेरे) मन-दर्पण में भासित होवे, वह छवि सुठाम ॥ २ ॥

नमो-नमो चन्द्रादेवी नमो खुदिराम,
कृपामयि माँ जननी लो मेरे प्रणाम ।
जयरामबाटी की मिट्टी चन्दन समान
वहाँ माता की है जन्मभूमि महातीर्थ स्थान
माँ के चरण में शरण ले के होवें पूर्णकाम ॥ ३ ॥

❑

ऊँ : प्रतीक

तुम्हारे मन में जो भी भाव उठता है, उसका एक प्रतिरूप शब्द भी रहता है; इस शब्द और भाव को अलग नहीं किया जा सकता । एक ही वस्तु के बाहरी भाग को शब्द और अन्तर्भाव को विचार या भाव कहते हैं । कोई भी व्यक्ति विश्लेषण के बल से विचार को शब्द से अलग नहीं कर सकता । बहुतों का मत है कि कुछ लोग एक साथ बैठकर यह स्थिर करने लगे कि किस भाव के लिए कौन से शब्द का प्रयोग किया जाए, और इस प्रकार भाषा की उत्पत्ति हो गई । किन्तु यह प्रमाणित हो चुका है कि यह मत भ्रमात्मक है । जब से मनुष्य विद्यमान है, तब से शब्द और भाषाएँ रही हैं । अब प्रश्न यह है कि एक भाव और एक शब्द में परस्पर क्या सम्बन्ध है । यद्यपि हम देखते हैं कि एक भाव के साथ एक शब्द का रहना अनिवार्य है, तथापि ऐसा नहीं कि एक भाव एक ही शब्द द्वारा प्रकाशित हो । बीस विभिन्न देशों में भाव एक ही होने पर भी भाषाएँ बिल्कुल भिन्न-भिन्न हो सकती है । प्रत्येक भाव को प्रकट करने के लिए एक न एक शब्द की आवश्यकता अवश्य होगी, किन्तु इन शब्दों का एक ही ध्वनिविशिष्ट होना कोई आवश्यक नहीं । विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न ध्वनिविशिष्ट शब्दों का व्यवहार होगा । इसलिए टीकाकार ने कहा है, 'यद्यपि भाव और शब्द का परस्पर सम्बन्ध स्वाभाविक है, तथापि एक ध्वनि और एक भाव के बीच एक नितान्त अलंघनीय सम्बन्ध ही रहे, ऐसी कोई बात नहीं ।'१ यद्यपि ये सब ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, तो भी ध्वनि और भाव का परस्पर सम्बन्ध स्वाभाविक है । यदि वाच्य और वाचक के बीच प्रकृत सम्बन्ध रहे, तभी यह कहा जा सकता है कि भाव और ध्वनि के बीच परस्पर सम्बन्ध है । यदि ऐसा न हो, तो वह वाचक शब्द कभी सर्वसाधारण के उपयोग में नहीं आ सकता । वाचक वाच्य पदार्थ का प्रकाशक होता है । यदि वह वाच्य वस्तु पहले से अस्तित्व में रहे, और हम यदि पुनः पुनः परीक्षा द्वारा यह देखें कि उस वाचक शब्द ने उस वस्तु को अनेक बार सूचित किया है, तो हम निश्चित रूप से यह मान सकते हैं कि उस वाच्य और वाचक के बीच एक यथार्थ सम्बन्ध है । यदि वे वाच्य पदार्थ न भी रहें, तो भी हजारों मनुष्य उनके वाचकों के द्वारा ही उनका ज्ञान प्राप्त करेंगे । पर हाँ, वाच्य और वाचक के बीच एक स्वाभाविक सम्बन्ध रहना अनिवार्य है । ऐसा होने पर, ज्यों ही उस वाचक शब्द का उच्चारण किया जाएगा, त्यों ही वह उस वाच्य पदार्थ की बात मन में ला देगा । सूत्रकार कहते हैं, ओंकार ईश्वर का वाचक है । सूत्रकार ने विशेष रूप से 'ऊँ' शब्द का ही उल्लेख क्यों किया है ? 'ईश्वर'– इस भाव को व्यक्त करने के लिए तो सैकड़ों शब्द हैं। एक भाव के साथ हजारों शब्दों का सम्बन्ध रहता है । 'ईश्वर'–इस भाव का सैकड़ों शब्दों के साथ सम्बन्ध है और उनमें से प्रत्येक ही तो ईश्वर का वाचक है । फिर उन्होंने 'ऊँ' को ही क्यों चुना ? हाँ, ठीक है; पर वैसा होने पर भी उन शब्दों में से एक सामान्य शब्द चुन लेना चाहिए । उन सारे वाचकों का एक सामान्य आधार निकालना होगा, और जो वाचक-शब्द सब का सामान्य वाचक होगा, वही सर्वश्रेष्ठ समझा जाएगा, और वास्तव में वही उसका यथार्थ वाचक होगा । किसी ध्वनि के लिए हम कण्ठ-नली और तालु का ध्वनि के आधार-रूप में व्यवहार करते हैं । क्या ऐसा कोई भौतिक ध्वनि है, जिसकी कि अन्य सब ध्वनियाँ अभिव्यक्ति हैं, जो स्वभावतः ही दूसरी सब ध्वनियों को समझा सकती हैं ? हाँ, 'ओम' (अउम्) ही वह ध्वनि है; वही सारी ध्वनियों की भित्तिस्वरूप है । उसका प्रथम अक्षर 'अ' सभी ध्वनियों का मूल है–वह सारी ध्वनियों की कुंजी के समान है, वह जिह्वा या तालु के किसी अंश को स्पर्श किये बिना ही उच्चारित होता है । 'म्' ध्वनि-शृंखला की अन्तिम ध्वनि है, उसका उच्चारण करने में दोनों ओठों को बन्द करना पड़ता है । और 'उ' ध्वनि जिह्वा के मूल से लेकर मुख के मध्यवर्ती ध्वनि के आधार की अन्तिम सीमा तक मानो ढुलकता आता है । इस प्रकार 'ऊँ' शब्द के द्वारा ध्वनि-उत्पादक की सम्पूर्ण क्रिया प्रकट हो जाती है । अतएव वही स्वाभाविक वाचक–ध्वनि है, वही सब विभिन्न ध्वनियों

---

१. सर्वे एव शब्दाः सर्वाकारार्थाभिधानसमर्थाः-इति स्थित एवैषां सर्वाकारैरर्थैः स्वाभाविकः सम्बन्धः । व्यास-भाष्य की वाचस्पति मिश्र कृत टीका ।

की जननीस्वरूप है । जितने प्रकार के शब्द उच्चारित हो सकते हैं—हमारी ताकत में जितने प्रकार के शब्द के उच्चारण की सम्भावना है, 'ओम्' उन सभी का सूचक है । यह सब तात्त्विक चर्चा छोड़ देने पर भी, हम देखते हैं कि भारतवर्ष में जितने सारे विभिन्न धर्मभाव हैं, यह ओंकार उन सब का केन्द्रस्वरूप है । वेद के सब विभिन्न धर्मभाव इस ओंकार का ही अवलम्बन किये हुए हैं । अब प्रश्न यह है कि इसके साथ अमेरिका, इंग्लैंड और अन्यान्य देशों का क्या सम्बन्ध है ? उत्तर यह है कि सब देशों में इस ओंकार का व्यवहार हो सकता है । कारण, भारत में धर्म के विकास की प्रत्येक अवस्था में—उसके प्रत्येक सोपान में ओंकार को अपनाया गया है, उसका आश्रय लिया गया है और वह ईश्वर सम्बन्धी सारे विभिन्न भावों को व्यक्त करने के लिए व्यवहृत हुआ है । अद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, भेदवादी, यहाँ तक कि नास्तिकों ने भी अपने उच्चतम आदर्श को प्रकट करने के लिए इस ओंकार का अवलम्बन किया था । मानव-जाति के अधिकांश के लिए यह ओंकार उनकी अपनी धार्मिक स्पृहा का एक प्रतीक बन गया है । अंग्रेजी गॉड (God) शब्द को लो । वह जिस भाव को प्रकट करता है, वह कोई अधिक दूर तक नहीं जा सकता । यदि तुम उसके अतिरिक्त अन्य कोई भाव उस शब्द से व्यक्त करने की इच्छा करो, तो तुम्हे उसमें विशेषण लगाना पड़ेगा—जैसे सगुण (personal), निर्गुण (impersonal), निर्विशेष (absolute) आदि, आदि । अन्य दूसरी भाषाओं में ईश्वरवाचक जो शब्द हैं, उनके बारे में भी यही बात घटती है, उनमें बहुत कम भाव प्रकट करने की शक्ति है; किन्तु 'ॐ' शब्द में ये सभी प्रकार के भाव विद्यमान हैं । अतएव सर्वसाधारण को उसका ग्रहण करना चाहिए ।

❑

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार	७०.००	योगदर्शन एवं योगसाधना	५०.००
श्रीरामकृष्ण	०५.००	मुक्ति के उपाय	१०.००
मनस्तत्व और आत्मानुभूति	३०.००		

स्वामी प्रज्ञानानन्द प्रणीत

राग और रूप ३००.००

रामकृष्ण वेदान्त मठ

१९ए एवं बी, राजा राजकृष्ण स्ट्रीट, कोलकाता—७०० ००६

☎ (०३३) ५५५-८२९२, ७३००

E-Mail : ramakrishnavedantamath@vsnl.net

Website : www.ramakrishnavedantamath.org

धर्म तथा धार्मिक जीवन

ब्रह्मलीन स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज

अनुवादक–स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम

रायपुर (छत्तीसगढ़)

[रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के दशम अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने सन् १९७९ ई० में रामकृष्ण मिशन आश्रम जलपाईगुड़ी में 'धर्म ओ धर्मजीवन' विषय पर एक आध्यात्मिक प्रवचन दिया था । वह पहले उक्त आश्रम की स्मारिका में तथा बाद में जनशिक्षा मंदिर रामकृष्ण मिशन सारदा पीठ बेलुड़ मठ की पत्रिका में प्रकाशित हुआ । उसे सारदापीठ ने एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया । प्रस्तुत निबन्ध उसी पुस्तिका का हिन्दी रूपान्तर है जिसे रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली ने १९८२ ई० में पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया था । यह बड़ी लोकप्रिय हुई । पुस्तिका सामाप्तप्राय है । भक्तों की प्रबल इच्छा एवं इसकी उपयोगिता देखकर इसे यहाँ पुनः प्रकाशित किया जा रहा है । अनुवादक हैं–बेलुड़ मठ के वरिष्ठ साधु श्रीमत् स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज । –सं०]

साधारणतः धर्म का अर्थ हम समझते हैं लोकाचार, सब तरह के पूजा पाठ, फिर मंदिर जाना, तीर्थ भ्रमण करना, कोई व्रत पालन करना । इन्हीं सब को हम धर्म समझते हैं । और जो लोग इनका पालन नहीं करते उन्हें हम अधार्मिक कहते हैं । किन्तु वास्तव में वह धर्म का सार नहीं है । स्वामी विवेकानन्द ने विनोद करते हुए एक कहानी कही है–

''मैंने देखा एक मंदिर की ओर हजारों लोग दौड़े जा रहे हैं । मुझे भी उत्सुकता हुई । मैं भी दौड़ने लगा। किन्तु यह क्या ? वहाँ पहुँच कर देखा एक अद्भुत काण्ड ! कोई भी मंदिर के अंदर आकर पूजा नहीं कर रहा है । दरवाजे के पास एक पचास सिर, सौ हाथ, दो सौ पेट और पाँच सौ पैर वाली एक मूर्ति खड़ी ! उसी के पैरों तले सब लोट पोट हो रहे हैं । एक व्यक्ति से कारण पूछने पर उत्तर मिला–''भीतर जो देवता है उनको दूर से प्रणाम करने से या एक-दो फूल डाल देने से ही उनकी यथेष्ट पूजा हो जाती है । असली पूजा तो इनकी होनी चाहिए जो दरवाजे पर विद्यमान हैं । और जो वेद, वेदान्त, दर्शन, पुराण और शास्त्र देख रहे हो उन्हें कभी-कभी सुन लो तो भी कोई हानि नहीं, किन्तु इनका हुक्म तो मानना ही पड़ेगा ।' तब मैंने फिर पूछा, 'इन देवता का नाम क्या है ?' उत्तर मिला, 'इनका नाम है 'लोकाचार' ।१ यह लोकाचार यदि न मानें तो समाज में हमारा रहना बड़ा कठिन हो उठता है । और इसे ही हम असल धर्म समझ बैठते हैं । किन्तु ऐसा नहीं है । तब क्या है ? हिन्दू शास्त्र में आत्मज्ञान का लाभ ही धर्म माना गया है ।

हम लोग जो सव लोकाचार मानते हैं उससे कुछ होने का नहीं । इस संबंध में शंकराचार्य ने कहा है–व्रत का पालन, दान, तीर्थ-भ्रमण यह सब कुछ भी क्यों न करो, ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती–शत-शत जन्मों में भी नहीं ।२

स्वामी विवेकानन्द अपनी पुस्तक 'राजयोग' के द्वितीय अध्याय के २५वें सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं–''प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है । बाह्य एवं अन्तः प्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है ।

कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपने ब्रह्मभाव को व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ ।

बस यही धर्म का सर्वस्व है । मत, अनुष्ठान-पद्धति, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया-कलाप तो उसके गौण अंग-प्रत्यंग मात्र हैं ।' मुख्य वस्तु है यह योग साधना अथवा चारों योगों की सहायता से मुक्ति लाभ करना । जो लोग धार्मिक जीवन व्यतीत चाहते हैं उनके लिए प्रारम्भ में ही कुछ बातें आवश्यक होती हैं। यह न होने पर धर्म का ठीक-ठीक अभ्यास नहीं किया जा सकता । क्या-क्या बातें आवश्यक हैं ?–वे जिन्हें शास्त्र 'साधन चतुष्टय' कहते हैं । या यों कह लें कि कुछ गुणों की आवश्यकता है । यम, नियम, श्रद्धा, समाधान ये कुछ गुण हैं । मूलतः ये सब आवश्यक हैं। विशेष कर 'श्रद्धा' । शास्त्रों की बातों में, गुरुदेव की बातों में यदि श्रद्धा न रहे तब तो हम धर्म जीवन में कुछ भी न कर पायेंगे । इसीलिए शास्त्र में कहा गया है–'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' (गीता' ४/३९) अर्थात् जो श्रद्धालु है, वह ज्ञान लाभ करता है । जिसके मन में श्रद्धा नहीं है, उसका कहीं कुछ नहीं होता । उसका इहलोक भी नहीं और परलोक भी नहीं । उसके द्वारा कुछ नहीं होता । ''अश्रद्धानश्च विनश्यति'' एसे अश्रद्ध

१. स्वामी विवेकानन्द : 'चिन्तनीय बातें' पृ० २२, २३ पंचम संस्करण, रामकृष्ण मठ, नागपुर ।

२. 'चर्पटपंजरिका'–कुरुते गंगासागर गमनं व्रत परिपालनमथवा दानम् । ज्ञानबिहीनः सर्वमतेन मुक्तिं भजति न जन्मशतेन ॥

व्यक्ति का नाश हो जाता है । इसीलिए श्रद्धा एक महत्वपूर्ण तत्त्व है ।

और क्या-क्या बातें आवश्यक है ? फिर आवश्यक है 'नित्यानित्य वस्तुविवेक', क्या नित्य है, क्या अनित्य है, इस प्रकार का एक विचार । मनुष्य को भगवान ने विचार-बुद्धि दी है । इसी विचार-बुद्धि से मनुष्य आगे बढ़ता है । अत्यन्त निम्न अवस्था अर्थात् जंगली अवस्था से एकदम परमहंस अवस्था तक जो कुछ भी होता है इसी विचार-बुद्धि के कारण होता है । इसीलिए विचार करना होगा कि क्या नित्य है और क्या अनित्य । इसके द्वारा जब हम समझ पायेंगे कि जगत नित्य नहीं है तब हमारा मन धर्म की ओर जाएगा । यह न होने पर हम सोचेंगे कि हम तो मजे में हैं, भगवान की क्या आवश्यकता है ? ऐसा होता है । जिन्होंने शास्त्र पढ़े हैं, उपनिषद् पढ़े हैं, जो खूब विचार-बुद्धि सम्पन्न हैं, उन्होंने देखा है कि कर्म के द्वारा योग-यज्ञादि के द्वारा जिन स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है वे चिरस्थायी नहीं है । इन योग-यज्ञादि कर्मों का फल जब समाप्त हो जाता है तब पुनः मनुष्य जन्म लेना पड़ता है । किन्तु दूसरी ओर वेदान्त जिस वस्तु के संबंध में कहता है उसकी उपलब्धि यदि की जाए तो यज्ञादि कर्मों के फल की तुलना में अधिक आनन्दपूर्वक रहा जा सकता है । यह देखकर तथा विचार करके वे लोग कर्म का जीवन त्याग कर वेदान्त की ओर झुक जाते हैं । इसीलिए विचार-बुद्धि की विशेष आवश्यकता है ।

फिर इस जीवन में या परलोक में जो भी भोग्य वस्तुएँ हैं, जिन्हें मनुष्य इस लोक में या स्वर्ग में जाकर भोगता है यदि उन भोगों के प्रति वासनाएँ हमारे मन से पूर्णतया नहीं निकल जातीं—उनके प्रति मन में वितृष्णा नहीं पैदा होती तो धर्मजीवन यापन करना बड़ा कठिन हो जाता है ।

और क्या चाहिए ? मुमुक्षुत्व । मुमुक्षुत्व माने क्या ? मुक्ति प्राप्ति या भगवत् दर्शन की तीव्र आकांक्षा और त्याग । यह आवश्यक है । यह सब होने पर तब धर्म-जीवन यापन किया जा सकता है ।

जिन्होंने कठोपनिषद् पढ़ा है वे जानते होंगे कि नचिकेता के पिता ने एक विश्वजित् नाम का यज्ञ किया था । इस यज्ञ का विधान यह है कि इसमें यज्ञकर्ता को अपनी सभी वस्तुओं का दान करना होता है । नचिकेता के पिता यह यज्ञ तो कर रहे थे किन्तु वे थे कृपण, अतः अपनी साधारण वस्तुएँ ही दान में दे रहे थे ।

नचिकेता ने देखा कि पिताजी बूढ़ी-दुर्बल और निकम्मी गायों का ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं । उसने समझ लिया कि पिताजी अच्छी वस्तुएँ दान में नहीं देना चाहते । उसने मन में सोचा कि इससे तो पिताजी को पाप लगेगा । उन्हें इस पाप से बचाना चाहिए । मैं उनका पुत्र हूँ । पुत्र भी तो पिता की सम्पत्ति होता है, अतः उनसे पूछूँ कि वे मुझे किसे दे रहे हैं । यह विचार कर उसके मन में श्रद्धा जागी । उसने पिता से पूछा कि पिताजी आप मुझे किसे दान में दे रहे हैं ? एक बार, दो बार, तीन बार बोलने पर नचिकेता के पिता ने कुछ रुष्ट होकर कहा—मैं तुझे यमराज को देता हूँ !

नचिकेता ने पिता की आज्ञा मान ली और यम लोक को चला गया । यमराज के घर पहुँच कर उसने देखा कि यमराज घर पर नहीं है । वह बिना खाये-पिये तीन दिन यमराज के दरवाजे पर ही बैठा रहा । तीन दिन पश्चात् जब यमराज लौटे तब उन्होंने देखा कि उनके द्वार पर तीन दिन से एक अतिथि बिना खाये-पिये बैठा है । वे दुखी हुए तथा उन्होंने नचिकेता से क्षमा मांगी और कहा कि मेरे द्वार पर बिना खाये-पिये तीन दिन तक पड़े रहने के कारण मैं तुम्हें तीन वर देता हूँ, तुम जो चाहो मांग लो ।

नचिकेता ने प्रथम वर मांगा कि जब मैं आपके लोक से लौटकर अपने घर जाऊँ तो मेरे पिता मुझे पहिचान लें तथा मुझ पर क्रोधित न हों ।

दूसरा प्रश्न एक यज्ञ के विषय में था । यमराज ने उसका उत्तर दिया तथा उस यज्ञ का नाम 'नचिकेता यज्ञ' कर दिया ।

तीसरे वर में नचिकेता ने प्रश्न किया 'अच्छा, कुछ लोग यह कहते हैं कि मरने के पश्चात् मनुष्य की आत्मा नहीं रहती, और कुछ का मत है कि मरने के पश्चात् भी आत्मा रहती है । इस विषय में निश्चित सत्य क्या है ? यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ क्योंकि इस विषय में आपसे श्रेष्ठ दूसरा कोई भी ज्ञाता नहीं है ।'

यमराज ने नचिकेता से कहा– 'इस विषय को देवता भी न जान पाये । तुम यह प्रश्न क्यों करते हो ? तुम मुझसे कुछ और मांग लो । विशाल साम्राज्य, धन-सम्पत्ति, राजप्रासाद, स्वर्ग के भोग, नृत्य, गान अप्सराएँ जो चाहो मांग लो किन्तु यह प्रश्न न करो ।'

इस पर नचिकेता ने कहा, 'आपकी ये वस्तुएँ भोग, नाच-गान, अप्सराएँ सब आपके ही पास रहें, मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जब मेरी आयु शेष होगी और मृत्यु मुझे ले जायगी तब ये सब चीजें यहीं रह जायेंगी । ये सब क्षणस्थायी वस्तुएँ लेकर मैं क्या करूँगा ? मुझे तो अपने उसी प्रश्न का उत्तर चाहिए ।''

यमराज ने देखा कि नचिकेता के प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्हें नचिकेता को आत्मज्ञान का उपदेश देना होगा, क्योंकि यह प्रश्न आत्मज्ञान विषयक है । अतः नचिकेता सचमुच आत्मज्ञान का अधिकारी है या

नहीं इसकी परीक्षा करने के लिए यमराज ने उसे ये प्रलोभन दिखाये थे। जब नचिकेता ने इन प्रलोभनों को ठुकरा दिया और कहा कि आपकी ये वस्तुएँ आपके ही पास रहें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है, मुझे तो मेरे प्रश्न का ही उत्तर चाहिए, तब कहीं यमराज ने नचिकेता को आत्मज्ञान का उपदेश दिया।

ठीक इसी प्रकार सभी गुरु शिष्य की परीक्षा करते हैं। जब गौरांग महाप्रभु अपने गुरु के पास संन्यास ग्रहण करने गये तब उन्हें देखकर गुरु के मन में सन्देह हुआ कि इतना सुन्दर एक युवक क्या संन्यास की रक्षा कर सकेगा? इसीलिए गुरु ने उनसे पूछा—'क्या तुम संन्यास के अधिकारी हो?'

चैतन्य देव ने कहा, 'आप परीक्षा करके देख लीजिए?' गुरु ने कहा, 'अच्छा तुम अपनी जीभ निकालो।' चैतन्य ने जीभ निकाल दी। गुरु ने उनकी जीभ पर थोड़ी सी खाँड़ (देशी शक्कर) रख दी। थोड़ी देर बाद कहा 'इसे फूँक कर उड़ा दो।' फूँकते ही खाँड़ उड़ गयी। तब गुरु ने कहा, 'हाँ तुम संन्यास के उपयुक्त हो। तुम्हारी सब इन्द्रियाँ तुम्हारे वश में है। तुम्हारी जीभ भी तुम्हारे वश में आ गयी है। जीभ को वश में करना सबसे कठिन है। 'जिते रसे जितं सर्वम्'—इस जिह्वा को यदि संयत किया जा सके तो सभी संयत हो जाता है। तुम्हारी जिह्वा पर तुम्हारा इतना संयम है कि खाँड़ तक न भींगी, इससे समझ में आता है कि तुम संन्यास के अधिकारी हो।'

इस प्रकार के कुछ गुण यदि शिष्य में न हों तो गुरु उसे व्यर्थ ही उपदेश नहीं देते। नचिकेता के विषय में भी ठीक यही बात है। इसी प्रकार धार्मिक जीवन बिताने के लिए हमलोगों में भी ये सब गुण न हों तो धर्म जीवन में अग्रसर होना अत्यन्त कठिन होगा। धार्मिक जीवन के लिए त्याग विशेष आवश्यक है। यदि हमारे जीवन में त्याग न हो तो कुछ भी न होगा। गीता के उपदेश के संबंध में ठाकुर ने कहा है कि त्याग ही गीता का सार है। दस बार गीता-गीता कहने पर त्याग हो जाता है। हमारे जीवन में किसी भी कार्य के लिए हमें त्याग स्वीकार करना पड़ता है। हम व्यापार करने जाते हैं, व्यापार के द्वारा धन कमाना चाहते हैं। इसके लिए भी हमें त्याग करना पड़ता है। व्यापार सम्बन्धी कार्यों में लगे रहने पर खाना-पीना, नहाना-धोना आदि शारीरिक आवश्यकताओं की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। पैसे कमाने के लिए इतना त्याग करना पड़ता है। जो विद्यार्थी अच्छी तरह परीक्षा पास करना चाहता है, उसे भी त्याग स्वीकार करना पड़ता है। उसी प्रकार हम भी जीवन में बिना त्याग के कुछ उपलब्ध नहीं कर पायेंगे। विशेषकर धार्मिक जीवन में त्याग ही मुख्य वस्तु है। इसीलिए संसार में जहाँ कहीं भी हमारी आसक्ति है उस आसक्ति को हम यदि न छोड़ सकें तो आगे नहीं बढ़ पायेंगे। नाव यदि नदी के किनारे के वृक्ष में बँधी हो और हम पतवार चलाते रहें तो वह नहीं चलेगी, क्योंकि वह बँधी है। ठाकुर के उपदेशों में है कि सारी रात नाव खेते रहे और सुबह देखा कि जहाँ के वहीं है, क्यों कि नाव बँधी थी। अपनी आसक्तियों के द्वारा यदि हम संसार से बँधे रहें तो धार्मिक जीवन में उन्नति करना बहुत कठिन है। चाहे जितना भी करें (धार्मिक साधना अनुष्ठान आदि) सभी इन्द्रियाँ हमारे वश में अवश्य होनी चाहिए। यदि एक इन्द्रिय पर भी हमारा वश न हो तो धार्मिक जीवन में अग्रसर होना अत्यन्त कठिन बात है। जैसे एक मिट्टी का घड़ा। उसकी पेंदी में एक छेद हो तो उसमें फिर हम जितना भी जल भरें वह सब बह जायेगा। और घड़ा खाली का खाली ही रहेगा। ठीक उसी प्रकार यदि एक इन्द्रिय भी हमारे वशवर्ती न हो तो हमारी सारी तपस्या उस एक इन्द्रिय से ही छेद वाले घड़े के जल के समान बह जायेगी और हम जहाँ के तहाँ रह जायेंगे। इसीलिए भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं कि जो समस्त इन्द्रियों का दमन कर मेरे ध्यान में बैठता है, वही मेरा ठीक-ठीक भक्त है। सभी इन्द्रियों को संयत करना होगा। कठोपनिषद् में कहा है कि भगवान् ने हमारी इन्द्रियों को बहिर्मुखी कर दिया है, इसी कारण सब इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़ती है; जैसे आँख-कान आदि। कान सदैव अच्छा सुनना चाहते हैं, आँखें अच्छी वस्तुएँ देखना चाहती हैं। जिह्वा अच्छी वस्तुएँ खाना चाहती है। इसी प्रकार सभी इन्द्रियाँ अच्छे-अच्छे रुचिकर विषय चाहती हैं। किन्तु भगवान् लाभ करने के लिए, शाश्वत जीवन प्राप्त करने के लिए, मुक्ति प्राप्त करने के लिए अन्तर्मुखी होना होगा। आँखें बन्द कर भीतर की ओर देखना होगा और अन्तर्मुखी हो ध्यान करते हुए भगवान् के दर्शन करने होंगे। कठोपनिषद् में कहा है—

पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयम्भू
स्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष
दावृत्तचक्षुरमृतत्व मिच्छन्॥

अर्थात्, स्वयम्भू परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बना दिया है, इसीलिए वे बाहर की वस्तुओं की ओर देखती हैं, भीतर नहीं देखतीं। किसी वीर पुरुष ने अमृतत्व पाने की इच्छा से आँखों को बन्द कर अन्तरात्मा के दर्शन कर लिये।

अपनी आत्मा का दर्शन करने के लिए आँखें मूंद कर ध्यान करो। यदि हम ठीक-ठीक अपनी इन्द्रियों को बहिर्जगत् से हटा कर अन्तर्मुखी कर सकें तो धीरे-

धीरे (आध्यात्यिक जगत में) आगे बढ़ सकेंगे। यह है बड़ा कठिन, क्योंकि यह स्रोत के विरुद्ध तैरना है। यह जल के स्रोत में शरीर को तैराकर स्रोत की दिशा में ही आगे बढ़ जाने के समान नहीं है। इसमें प्रवाह के विरुद्ध जाना होगा, इसीलिए बहुत कष्टकर है। पर कष्टकर हो तो क्या किया जाय, दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं है। करना तो यही होगा। कुछ दिन अभ्यास करने पर तब यह बहुत सरल हो जाएगा। अन्तर्मुखी होने पर तब जप-ध्यान बहुत अच्छा होता है। किन्तु यह स्थिति प्राप्त करने के लिए अनेक दिन चेष्टा करनी होगी। यह दो-चार दिन का काम नहीं है। जैसे लोहे की कोई पट्टी गोल लपेटी हुई हो, उसे यदि हम सीधा करना चाहे तो एक बार खोलने पर ही वह सीधा नहीं हो जाती, छोड़ देने पर फिर से मुड़ जाती है। हमारे मन की भी यही अवस्था है। थोड़ी देर की चेष्टा के पश्चात् थोड़ी छूट देते ही मन पुनः बहिर्मुख हो जाता है। पट्टी को सीधा करना हो तो उसे उल्टी दिशा में लपेटना होगा तथा उस पर एक भारी पत्थर रखकर उसे कुछ दिन उसी प्रकार दबाये रखना होगा, तब पट्टी फिर से नहीं मुड़ेगी। मन की भी वही अवस्था है। कुछ दिन यदि हम वलपूर्वक मन को अन्तर्मुखी करके अपने अन्तःकरण में रखने की चेष्ट करें तो कुछ समय बाद अभ्यास के कारण यह स्वाभाविक हो जाता है। तब जप-ध्यान बहुत सुन्दर होता है। इसीलिए कहा जाता है कि सदा भगवान् का स्मरण-मनन करो। जो मंत्र मिला है, मन-ही-मन सदा उसका जप करो, इससे मन को सब समय भगवान् के पाद-पद्मों में रखने की चेष्ट होगी। लम्बे समय तक इस प्रकार अभ्यास करने पर सब ठीक हो जाएगा। राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) हम लोगों को बतलाया करते थे कि एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, महाराज आपके दिन किस प्रकार कट रहें है? इस पर उन्होंने उत्तर दिया—देखो भाई, जिस दिन भगवान् का स्मरण-मनन कर पाता हूँ वह दिन बड़ा अच्छा बीतता है और जिस दिन नहीं कर पाता वह एकदम अच्छा नहीं बीतता। दुर्दिन और क्या है?

तद्दिनं दुर्दिनं मन्ये, मेघाच्छन्नं न दुर्दिनं।
यद्दिनं हरिसंलापकथा पीयूष वर्जितम्॥

(स्वामी तुरीयानन्दजी के अल्मोड़ा से २१/५/६१) को लिखित पत्र से उद्धृत)

जिस दिन आकाश मेघाच्छन्न हो (तूफान, वर्षा हो) वह दुर्दिन नहीं है, किन्तु जिस दिन भगवान् के नामामृत का पान नहीं कर पाता वही सचमुच दुर्दिन है।

इसीलिए सर्वदा अपने मन को भगवान के पाद-पद्मों में रखने की चेष्टा करनी होगी। इस प्रकार लम्बे समय तक करने पर सब ठीक हो जाएगा। जो लोग धार्मिक जीवन आरम्भ करते हैं उनमें अनेकों ऐसा सोचते हैं कि ध्यान में बैठकर आँख मूँदते ही ईश्वर के दर्शन हो जायेंगे, इष्ट मूर्ति के दर्शन हो जायेंगे, सब बातों को ठीक-ठीक समझने लगेंगे, ध्यान कर सकेंगे और मन ठीक हो जायेगा। ये सब बातें ठीक नहीं हैं। ऐसा कुछ भी नहीं होगा। प्रारंभ में सब अंधकार ही दिखेगा, मन चञ्चल रहेगा।

जप-ध्यान के संबंध में अनेको लोग प्रश्न करते हैं कि हम जप-ध्यान नहीं कर पाते, मन बड़ा चंचल रहता है। अरे, वह तो होगा ही, मन तो बड़ा चंचल रहेगा ही। उसी मन को स्थिर करने के लिए ही तो जप-ध्यान है। तुमने यदि यह समझ लिया है कि यह रोग बहुत दिन का है, तब दवा भी बहुत दिनों तक खानी होगी। रोगी यदि कहे, महाशय मेरा रोग दूर नहीं हो रहा है तब दवा कैसे खाऊँ, पथ्य कैसे करूँ, तो क्या उसका ऐसा कहना उचित है? रोग दूर करने के लिए ही तो दवा लेना और पथ्य करना है। जिससे तुम्हारा मन स्थिर हो इसीलिए तो जप-ध्यान करना है। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को स्थिर किया जा सकता है। अभ्यास का अर्थ है, तुम्हें रोज जप-ध्यान करने के लिए बैठना ही होगा-मन लगे या न लगे। उसके पश्चात् नियमानुसार प्रातः संध्या निर्दिष्ट समय में एक घंटा या आधा घंटा, जितना हो सके, बैठ कर भगवान् का चिंतन करने की चेष्टा करनी होगी। हो सकता है भगवान् का चिंतन न हो पाए, मन चंचल रहे तो रहने दो, पर अभ्यास करना होगा। करते-करते सब ठीक हो जाएगा। उस अभ्यास को बनाए रखना होगा। इस प्रकार अभ्यास करते-करते देखोगे, कुछ दिनों पश्चात् मन अपने आप ठीक उसी समय भगवान् का चिंतन करने लगा है।

अभ्यास का और एक अर्थ है—ध्यान के समय मन जब इधर-उधर जाए तो उसे वहाँ से हटाकर पुनः-पुनः इष्टमूर्ति में, ध्येय वस्तु में लगाना। मन जितनी बार इधर-उधर जाए उतनी बार यह करना होगा। जितनी बार मन ध्येय वस्तु से दूर हो उतनी ही बार उसे पकड़ कर इष्ट चिंतन में लगाना होगा। यही ठीक-ठीक अभ्यास है। ऐसा न करने पर नहीं होगा। मन चंचल है यह तो जानी हुई बात है। मन चंचल है ऐसा सोचकर हताश हो जाने से कुछ नहीं होगा।

योगशास्त्र के प्रणेता भी इस अभ्यास और वैराग्य की बात कहते हैं, जो मैंने पहले ही तुम लोगों से कही है। त्याग न होने पर मनुष्य के धर्म जीवन में कुछ भी न होगा। वैराग्य की विशेष आवश्यकता है। यह वैराग्य है विचार द्वारा मन को विषय भोगों से हटा लेना। मन में असंख्य वासनाएँ एक दम छटपटाती रहती हैं। जैसे

उबलता हुआ पानी 'डग्बग्' 'डग्बग्' करता है, उसी प्रकार मन में वासनाएँ भी 'डग्बग' करती रहती हैं। वासनाओं का यदि त्याग किया जाय तो मन धीरे-धीरे ठण्डा हो जाता है। मन के ठीक-ठीक ठंडा होने पर, उसमें किसी भी प्रकार की वासना न होने पर, उसमें फिर किसी प्रकार की वृत्ति नहीं उठेगी। जैसे किसी तालाब के ऊपर हवा बह रही हो, उसमें लहरें उठ रही हों और उसका जल गंदला हो, तो उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिंब नहीं दीख पड़ेगा। किन्तु जल यदि शुद्ध हो तथा हवा नहीं चल रही हो तो उस जल में चन्द्रमा का प्रतिबिंब स्पष्ट दीख पड़ेगा। उसी प्रकार यदि मन शुद्ध हो तथा उसमें कोई वासना न हो तो ऐसे मन में भगवान् के दर्शन होते हैं। योगशास्त्र में कहा है—योग का तात्पर्य है 'चित्तवृत्ति निरोध'। 'चित्तवृत्ति निरोध' का अर्थ है मन में भगवान् के चिंतन के अतिरिक्त और किसी विचार का न होना। शास्त्रों में इसकी एक उपमा दी गयी है। वायुरहित स्थान में दीपशिखा जिस प्रकार निष्कम्प रहती है, उसमें किसी प्रकार की हल-चल नहीं होती, उसी प्रकार मन जब कामना वासना से सर्वथा रहित हो भगवत्-चिंतन में मग्न हो जायगा, थोड़ा भी चलायमान नहीं होगा अर्थात् मन में और कोई भी विचार नहीं उठेगा, तब भगवान् के दर्शन होंगे।

बहुत से लोग पूछते हैं—जप-ध्यान दोनों जून करने की क्या आवश्यकता है? एक जून करने पर ही न होगा? यह एक बच्चों जैसा प्रश्न है। तब फिर तुमने दीक्षा क्यों ली? भगवान्-लाभ के लिए ही तो? तुम्हारी यदि भगवान्-लाभ की तीव्र आकांक्षा न हो तो एकदम न करने पर भी चलेगा। किन्तु यदि भगवान् लाभ करना चाहते हो तो तुम्हें दोनों जून जप-ध्यान करना होगा। मैं यदि प्रश्न करूं कि तुम्हें दोनों जून खाने की क्या आवश्यकता है? एक जून खाने से नहीं चल सकता? मैं परिहास नहीं कर रहा हूँ। ठीक-ठीक प्रश्न कर रहा हूँ। हम दोनों जून क्यों खाते हैं? इसीलिए कि सुबह एक बार खाने पर शाम को फिर भूख लगती है। रात में यदि न खाएँ तो शरीर थोड़े दिनों में दुर्बल हो जायगा और शरीर में कोई उत्साह नहीं रह जाएगा। उसके द्वारा कुछ काम भी नहीं किया जा सकेगा, शरीर बीमार हो जायगा। यह सब बहुत-सी बातें होंगी। इसलिए तो हमें दोनों जून खाने की आवश्यकता है। जब कभी हम बाहर जाते हैं, तब जहाँ कभी भी हो, जितनी भी असुविधा क्यों न हो, घर में जिस प्रकार बैठकर खाते है वैसा न भी हो तो रास्ते के किनारे खड़े होकर दो-चार पूड़ियाँ और आलू की सब्जी खा लेते हैं, क्योंकि शरीर को ठीक रखना होगा, नहीं तो वह कमजोर हो जायेगा। उसी प्रकार जप-ध्यान भी है। जप-ध्यान न करने पर मन दुर्बल हो जायगा। यह बात हम अभी नहीं समझ पा रहे हैं, क्योंकि हमारा मन रोगग्रस्त है। इसीलिए मन की स्वस्थ अवस्था क्या है यह हम नहीं जान पा रहे हैं। सोचते हैं कि मन की तो ऐसी ही अवस्था रहती है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। मन की ठीक अवस्था होने पर समझ पाओगे कि उस अवस्था में कितना आनन्द है, तथा उस आनन्द को संसार के दुःख कष्ट विचलित नहीं कर पाते। अभी हारे मन की जो स्थिति है उसमें यदि कोई व्यक्ति आकर कुछ कड़ी बात कह दे तो हमें तीन दिन नींद नहीं आती। कोई वस्तु खो जाय तो हमारा मन खराब हो जाता है। यदि परिवार में कोई अस्वस्थ हो जाय तो हमारा मन उदास हो जाता है। हमारा मन सदैव रोगग्रस्त है। किन्तु गीता में यह बताया गया है कि जिन्होंने योग में पूर्णता प्राप्त कर ली है, जो परम पद पर पहुँच गये हैं उनके मन की कैसी अवस्था होती है। कठिन-से-कठिन आघात लगने पर भी उनका मन थोड़ा भी विचलित नहीं होता—यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। (गीता ६/२२) उन्हें कितने आघात भी क्यों न लगें, उनके मन में तनिक भी विकार नहीं होगा। यही मन की स्वस्थ अवस्था है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ करना होगा। एक और बात कहूँ, शरीर की अपेक्षा मन की ओर अधिक ध्यान देना होगा। जप-ध्यान की ओर अधिक ध्यान देना होगा। जप-ध्यान की ओर अधिक ध्यान क्यों देना होगा? इसीलिए कि जब हमारा शरीर नष्ट होगा, हम मर जायेंगे और पुनः जन्म ग्रहण करेंगे तब नया सबल शरीर तो मिल जायगा किन्तु मन नया नहीं मिलेगा। अभी के इसी मन को लेकर ही हम नये शरीर में जन्म लेंगे। इसीलिए इस जीवन में जितना संभव हो इस मन को स्वस्थ करने की चेष्टा करें, तब आगामी जन्म में अच्छा मन लेकर जन्म ग्रहण करेंगे तथा उस जन्म में उन्नति की ओर अधिक चेष्टा करेंगे। इसीलिए इस जन्म में भले ही हम योगाभ्यास करने के प्रयत्न में असफल हो जायें, तब भी पुनः जब जन्म होगा तब—'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते' (गीता ६, ४१ अर्थात योगभ्रष्ट व्यक्ति सदाचार संपन्न घनी व्यक्ति के घर जन्म लेता है) के अनुसार एक उत्तम परिवार में हमारा जन्म होगा। योग भ्रष्ट वयक्ति अपने पूर्व-संस्कारों के कारण पुनः उस अवस्था में भगवान्-लाभ की चेष्टा करेगा। किन्तु हमारे मन की अवस्था खराब हो तो जो कुसंस्कार हैं उन्हें ही लेकर पुनः हमारा जन्म होगा। इसलिए मन को स्वस्थ करने की चेष्टा ही मौलिक एवं महत्वपूर्ण बात है। शरीर आज है, कल इसके चले जाने पर भी कोई क्षति नहीं होगी। किन्तु मन के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। मन के सम्बन्ध में

ऐसी बात नहीं है । मन के स्वस्थ न होने पर कोई चारा नहीं है, क्योंकि उसी अस्वस्थ मन को लेकर हमें सब कुछ करना पड़ेगा– इहलोक, परलोक सभी जगह । इसीलिए मन को स्वस्थ करने के लिए, शुद्ध करने के लिए, सबल करने के लिए सर्वाधिक चेष्टा की आवश्यकता है । उसके लिए सुबह-शाम, जितनी बार खुशी, तुम जप-ध्यान कर सको, करो । इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं उठता ।

अनेक व्यक्ति प्रश्न करते हैं–१०८ बार जप करने से क्या न हो जायेगा ? अरे ! १०८ बार जप करने पर होगा क्यों नहीं ? तुम यदि बैलगाड़ी से जाना चाहो तो जा सकते हो । जाकर रास्ते में सोये रह सकते हो । किन्तु तुम्हारे स्थान (जलपाईगुड़ी) से कलकत्ता पहुँचने में बहुत देर होगी । कलकत्ता जल्दी पहुँचने के लिए तुम्हें शीघ्र जाना होगा । यदि तुम मोटरगाड़ी पा सको तो मोटरगाड़ी से जाना होगा । इस संबंध में और कुछ कहना बाकी है क्या ? फिर भी अपनी क्षमता के बाहर चेष्टा करना ठीक न होगा । इससे स्नायुओं पर प्रतिक्रिया हो सकती है और शरीर अस्वस्थ हो सकता है । स्नायु-आघात (Nervous Breakdown) होने पर मुश्किल हो जायगी । अतएव, प्रारम्भ में ही अति उत्साहित हो २४ घंटे जप-ध्यान करेंगे, ऐसा सोचना पागलपन है । ऐसा सब करना उचित नहीं है । क्रमशः सब सहते हुए धीरे-धीरे जप-ध्यान का अभ्यास बढ़ाना होगा । असल बात यह है कि जो लोग धार्मिक जीवन बिताना चाहते हैं, उन्हें प्रतिदिन निष्ठापूर्वक चेष्टा करनी होगी । इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

तस्मात् सर्वेषु कालेषु माम् अनुस्मर युध्य च ।
(गीता ८/७)

–'अतएव सर्वदा मेरा स्मरण करते हुए युद्ध कर।'

मृत्यु कब आयगी, ठीक नहीं । मृत्यु के समय जो मेरा स्मरण करता है, वही मुझे पाता है । इसीलिए भगवान् कहते हैं कि युद्ध में किस समय मृत्यु हो जाय, कुछ ठीक नहीं, अतएव सब समय मेरा स्मरण करो और युद्ध करो–ये दोनों साथ-साथ चलें ।

हमारे लिए भी ठीक यही बात है । संसार के सब काम-काज के साथ-साथ भगवान का नाम स्मरण बनाए रखना होगा । राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने एक जगह कहा है–उनके पास एक शिष्य रहता था। वे शिष्य से कहते, 'देख, मैं इस प्रकार करता हूँ, प्रतिदिन (भगवान् का) स्मरण-मनन करता हूँ । तू भी इसी प्रकार सर्वदा स्मरण-मनन करना ।'

अतएव, जप ही अधिक करना होगा, क्योंकि जप में ही समस्त शक्ति है । मंत्र में जो शक्ति छिपी है वह जब विकसित होती है तब भगवदर्शन होता है । जैसे वट का एक बीज है । वह सरसों के दाने के समान छोटा होता है, किन्तु उस छोटे बीज के भीतर ही संपूर्ण वट वृक्ष समाया हुआ है । उस बीज को हम भूमि में बो देते हैं । जल, खाद आदि देते हैं, बाड़ लगाते हैं । बीज अंकुरित होता है, बड़ा होता है, और क्रमशः एक विशाल वटवृक्ष का रूप ले लेता है । किन्तु यह वृक्ष था कहाँ ? एक छोटे-से सरसों के दाने के समान बीज के भीतर ही तो समाया हुआ था । जो अन्तर्निहित था वही विकसित होकर बाहर आया । उसी प्रकार तुम्हारे इष्ट देवता का स्वरूप बीज मन्त्र में सन्निहित है ! बीजमन्त्र का जप करते-करते जब वह चैतन्य होगा, तब धीरे-धीरे तुम अपने इष्टदेवता का स्वरूप समझ पाओगे । जब तुम्हारे अभ्यास में परिपूर्णता होगी तब भगवान् के दर्शन होंगे । इसीलिए जप करना अत्यंत आवश्यक है । यह मैंने इसलिये कहा कि बहुत-से लोग बाहर की पूजा में ही समय नष्ट कर देते हैं ।

हिन्दुओं के अनेक देवी-देवता हैं । बहुत-से लोग अपने पूजा घर को विभिन्न प्रकार के देवी देवताओं के चित्र से भर कर एक अजायब घर बना लेते हैं । जहाँ-जहाँ जाते हैं, काशी, रामेश्वर, मदुराई या वृन्दावन–वहाँ जो सब चित्र बिकते हैं, उन सब देवताओं के चित्र खरीद कर अपने पूजा घर में लाकर रखते हैं तथा उन सभी में फूल-चंदन आदि देना शुरू कर देते हैं । वैसे ही तो संसार में जप-ध्यान का समय नहीं मिलता, उसपर इतने देवता बढ़ाकर उन्हें फूल जल चढ़ाते-चढ़ाते जो थोड़ा समय बच रहता है वह भी समाप्त हो जाता है । उसके बाद नमः-नमः करके १०८ जप भी नहीं हो पाता । बहुत-से लोग चिढ़कर कहते हैं–१८ बार जप करने से ही नहीं होगा ? १०८ बार करने की क्या आवश्यकता है ? यह सब बचपना छोड़ और कुछ नहीं है ।

अतएव, घर में बहुत से देवता रखना ठीक नहीं । यह कोई संकीर्णता की बात नहीं है, यह व्यावहारिक बात है । तुम यदि घर में बहुत-से देवता पाल रखो और उनकी पूजा करो तब तुम्हारा समय उसी में चला जायेगा तथा जप नहीं हो पायेगा । किन्तु जप ही मुख्य बात है । जप जितना अधिक करो उतना ही अच्छा है । श्रीमाँ ने कहा है–'जपात् सिद्धिः ।' जप करते-करते सिद्धि हो जाती है, और कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती ।

मैंने इतनी देर तक तुम लोगों से जो बातें कहीं उन पर अच्छी तरह विचार करो । यदि इन बातों से तुम लोगों का कुछ उपकार हुआ तो मैं परिश्रम को सार्थक मानूँगा ।

❑

धर्म के स्वरूप श्री कृष्ण भगवान

–डॉ० रवीन्द्र नागर

बुद्धि के चार ईश्वरीय रूपों-धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य की पूर्णता श्रीकृष्ण में पूरी दिखती है। धर्म स्थापना के लिए अवतार लेने वाले कृष्ण का प्रत्येक कार्य धर्म की कसौटी है। रज औ तम का स्पर्श उनमें बिलकुल नहीं है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होंने आगन्तुकों के पैर धोने का काम अपने ऊपर लिया था। निर्धन सुदामा का पैर आंसुओं से धोने की बात प्रसिद्ध है। महाभारत युद्ध के पूर्व समझौते के प्रयत्न में जब दुर्योधन के पास गए थे तो दासी कुल में उत्पन्न भक्त बिदुर का आतिथ्य स्वीकार करना अधिक अच्छा समझा। उन्होंने शिशुपाल की ९९ गालियाँ शांति के साथ सहीं। कंस की मृत्यु के पश्चात् लोगों ने अनुरोध किया कि आप राजा वन जाएँ किन्तु उन्होंने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि हमारे पूर्व पुरुष यदु को महाराज ययाति ने राज्य का अधिकारी नहीं बनाया। मैं कुल परंपरा को तोड़ नहीं सकता। उन्होंने धर्म के गूढ़ तत्वों का मर्म स्पष्ट किया। धर्म का स्वरूप देश काल मात्र संक्षिप्त होता है। एक समय में एक के लिए जो धर्म है भिन्न अवसर पर भिन्न अधिकार के लिए वह धर्म नहीं रह जाता। जब भीष्म पितामह ने यह कह कर कि राजा देवता है इसलिए मैं दुर्योधन के पक्ष में हूँ–अपने पक्ष का समर्थन किया तब कृष्ण जी ने कह दिया कि दुष्ट राजा माननीय नहीं हो सकता। उनकी शिक्षा है कि अपना कर्त्तव्य समझ कर धर्म का अनुष्ठान किया जाए। महाभारत में आख्यान है कि मृत दशा में उत्पन्न परीक्षित को जिलाते समय श्री कृष्ण जी ने यही कहा था 'यदि मैंने आजन्म कभी धर्म या सत्य का अतिक्रम न किया हो तो यह बालक जी उठे'। बुद्धि का दूसरा रूप ज्ञान भी भगवान् कृष्ण में सर्वांग पूर्ण था। उनमें हर प्रकार के ज्ञान का कोष भरा हुआ था। इसके प्रमाणं के लिए केवल भगवद्गीता के नाम का उल्लेख पर्याप्त है। श्रीमद्भागवत पुराण के एकादश स्कंध में भी उनके ज्ञान की गरिमा दर्शनीय है। बुद्धि का तीसरा स्वरूप ऐश्वर्य भी उनके व्यक्तित्व में प्रचुर परिणाम में परिलक्षित होता है। बहुत से लोग ऐश्वर्य का अर्थ केवल समृद्धि समझ लेते हैं किन्तु इस पक्ष में बुद्धि के विकास का नाम ऐश्वर्य है। इनके प्रतिफल आध्यात्मिक, अणिमा, महिमा आदि सिद्धियाँ और बाह्य अलौकिक संपत्ति आदि हैं। द्वारकापुरी की अलौकिक समृद्धि, अलौकिक संपत्ति का निदर्शन है। बाल्यकाल में ही पूतना हनन, कालिया दमन, गोवर्धनधारण आदि ऐसे कार्य हैं, जो सामान्य नहीं कहे जा सकते। विश्वरूप दर्शन, अनेकरूप दर्शन आदि आध्यात्मिक शक्ति की पराकाष्ठा है। इसी रूप में उन्होंने अर्जुन से 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योग मैश्वरम्' कह कर अपना ऐश्वर्य युक्त दिव्य रूप दिखाया। बुद्धि का चौथा स्वरूप वैराग्य रागद्वेष का विरोधी रूप है। वैराग्य बुद्धि की पूर्णता तब होती है, जब व्यक्ति संसार में रहता हुआ भी अनासक्त रहे। कृष्ण का संपूर्ण जीवन हमें इसी अनासक्त भाव की शिक्षा देता है।

रागद्वेष शून्यता का दूसरा नाम समता है जो उनके चरित्र में ओत-प्रोत है। हर एक यही समझता था कि श्रीकृष्ण मेरे हैं किन्तु वे किसी एक के नहीं थे, सबके थे और सबसे स्वतंत्र भी। इस प्रकार स्पष्ट है कि भगवान के जो लक्षण बतलाये गये हैं वे सब श्रीकृष्ण जी में मौजूद हैं। कहा गया है–

वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्य धर्मश्चेत्यात्म बुद्धयः।
बुद्धयः श्री यशश्चैव वै षट् वै भगवतो भगाः॥

भगवान श्रीकृष्ण में अव्यय पुरुष का आचरण है। अव्यय पुरुष के पांचों लक्षण उनमें सन्निहित हैं। गीता में उन्होंने अपने को अव्यय पुरुष भी कहा है। अव्यय की मुख्य पाँच कलाएँ हैं–वाक्शक्ति से उन्होंने अनेक बार काम लिया। प्राण कला के विकास के लक्षण हैं–बल, शौर्य, क्रियाशीलता आदि। शैशव काल से ही उनमें इन शक्तियों के विकास प्रकट हो गए। तीसरी कला मन के विकास के लक्षण हैं। मनस्विता, उत्साहशीलता, मनमोहकता आदि। उनकी मनस्विता, साहस आदि के उदाहरण उनके चरित्र में सैकड़ों हैं। मनमोहकता इसी से सिद्ध है कि वे चितचोर कहे जाते हैं।

अव्यय की सर्वप्रथम और सबसे उत्कृष्ट पांचवीं कला आनंद है। आनंद ही ब्रह्म का मुख्य स्वरूप बताया गया है। उनका नाम सच्चिदानंद है। इसका पूर्ण विकास कृष्णावतार में हुआ है। आनंद दो प्रकार के होते हैं–समृद्धयानंद और शान्त्यानंद। इष्ट वस्तु की प्राप्ति पर पहला आनंद होता है। किन्तु यह स्थायी होता। उन वस्तुओं के अभाव से आनंद हो जाता है। शत्यानंद प्रथम आनंद की परिणति की अवस्था में होता है। यह आनंद प्रायः सभी अवतारों में पाया जाता है। किन्तु दोनों आनंदों की चरम परिणति भगवान कृष्ण में ही है। कृष्ण हृदय-हार हैं और भक्ति के आनंदमय आश्रय हैं। सब प्रकार के लोग उनके चरित्र से प्रेरणा प्राप्त करते हैं–

'नमो विज्ञान रूपाय विश्व स्थित्यन्त हेतवे।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविंदाय नमो नमः॥' ❑

गोस्वामी तुलसीदास

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़

महापुरुषों के जीवनेतिहास एवं चरित्र तथा उनके उपदेशों, कृतियों एवं साहित्य के अध्ययन द्वारा उनकी महानता को आँका जाता है। यही विधि हम तुलसीदास जी के विषय में भी प्रयोग कर सकते हैं।

महाकवि तुलसीदास जी ने एक बृहत् साहित्य की रचना की है, जिसमें रामचरितमानस सर्वश्रेष्ठ बृहत्तम एवं सबसे लोकप्रिय है। तुलसीदास कृत इस विशाल साहित्य के अध्ययन की भी दो दिशाएँ, दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। पहली विधि रामचरितमानस के प्रवचनकारों की है, जो तुलसीदास जी लिखित प्रत्येक पंक्ति को वेद-वाक्य की तरह सामाजिक एवं गूढ़ तात्पर्य पूर्ण महामंत्र स्वीकार कर अपनी सामर्थ्यानुसार उसकी विस्तृत व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं। उनके अध्ययन के अनुसार तुलसीदास जी एक महान् संत, मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं। वे एक महान् दार्शनिक, समाज सुधारक एवं समाज को नयी दिशा प्रदान करने वाले युगाचार्य हैं। उत्तर काण्ड के मानस-रोग प्रसंग में मानव मन के दुर्गुणों एवं उनके सूक्ष्म, छद्म रूपों का वर्णन करते समय तुलसीदास जी एक महान् मनोविज्ञ एवं साधकों के मन को समझने, एवं उसके दोषों का ईलाज बताने वाले सुदक्ष आचार्य प्रतीत होते हैं।

सगुण-निर्गुण, रूप-अरूप, ब्रह्म के इन विभिन्न रूपों का समन्वय करते हुए तो वे सर्वत्र दिखाई देते हैं। भगवान् राम के जन्म के समय माता कौशल्या सर्वप्रथम भगवान् का चतुर्भुज रूप में दर्शन करती है—'लोचन अभिरामा तनु धनश्यामा, निज आयुध भुज चारी।' फिर स्तुति करते हुए वे भगवान् को अनन्त, तथा "मायागुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनंता।" कह कर संबोधित करती है और अन्त में वे ही ब्रह्मस्वरूप भगवान् माँ के कथन पर बालक बन रुदन करने लगते हैं—कितने सुन्दर ढंग से ब्रह्म के निर्गुण-निराकार, सगुण साकार एवं मानवी लीला करने वाले अवतारी रूप का तुलसीदासजी ने समन्वय किया है।

भगवान् राम के माध्यम से ब्रह्मर्षि वशिष्ठ और एक क्षुद्र निषाद का मिलन कराकर; अपने सहायकों के रूप में वानरों एवं भालुओं को चुनवाकर, यही नहीं, राक्षस कुल के विभीषण को आश्रय प्रदान करवाकर तुलसीदास जी ने कितना महान् सामाजिक सन्तुलन बनाने का, मतभेद मिटाने का प्रयत्न किया। ज्ञान और भक्ति का अद्भुत संगम तो रामचरित मानस के प्रत्येक पृष्ठ पर पाया जा सकता है।

तुलसी साहित्य के अध्ययन की दूसरी विधि है उन साहित्यकारों एवं भाषाविदों की जो एक निष्पक्ष निरीक्षक के रूप में उसका अध्ययन करना चाहते हैं। उनमें तुलसीदासजी के प्रति भावुक लगाव नहीं, और न ही उन्हें वे मंत्रद्रष्टा ऋषि या संत मानते हैं। वे तुलसी साहित्य को अपनी गवेषणा या Research का विषय बनाकर उसके गुण अथवा दोषों का अध्ययन करना चाहते हैं। ऐसे निष्पक्ष समालोचकों की दृष्टि में भी तुलसी साहित्य खरा ही उतरता है। वे इसमें पाते हैं एक उच्चतम साहित्य की समस्त विशेषताएँ। दोहा, चौपाई, सोरठा आदि नाना प्रकार के छन्द, करुण, हास्य, मृदु, शृंगारादि भाषा के समस्त रस, रूपक, उपमा, यमक अलंकार आदि इसमें प्रचुर मात्रा में हैं। उच्चतम विचार एवं भावों का प्रभावशाली सम्पादन तो है ही। इसी कारण विश्व के महान मनीषियों ने गहन अध्ययन के बाद रामचरितमानस को भारत की ही नहीं, विश्व की एक महान् कृति का गौरव प्रदान किया है।

जब हम इस महान् साहित्यकार, सन्त एवं समाज सुधारक के जीवन एवं चरित्र के अवलोकन में प्रवृत्त होते हैं, तो हमें निराशा ही हाथ लगती है। भारतीय मन सदा ही इतिहास के प्रति उदासीन रहा है। भारतीय संस्कृति के निर्माता ऋषिगणों ने अपनी साधना उपलब्धि में अपने व्यक्तित्व को इतनी अधिक मात्रा में विस्तृत कर दिया था कि आने वाली पीढ़ियों को युगों तक मार्गदर्शन प्रदान करने वाले शाश्वत सत्यों का आविष्कार कर उपदेश देते हुए भी उन्होंने अपने नाम का उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा। उपनिषदों को पढ़ जाइए। यत्र-तत्र याज्ञवल्क्य भृगु आदि दो एक ऋषियों के नामों के उल्लेख के अतिरिक्त इस विशाल उच्चतम भावराशि के उपदेशक का आप कहीं नाम ही नहीं पायेंगे। उनके जीवन वृतान्त की आपकी जिज्ञासा की पूर्ति की तो कोई सामग्री ही आपको नहीं मिलेगी। यही बात तुलसीदास जी के विषय में भी सत्य है। भगवान् श्रीराम के लोक कल्याणकारी जीवन एवं चरित्र का जन साधारण में प्रचार करना ही तुलसीदास जी का अभीष्ट था, स्वयं ख्याति लाभ करना नहीं। इसलिए न तो उन्होंने स्वयं अपने जीवन-वृत्तान्त का कभी वर्णन किया और न ही सिद्धान्तों में ही रुचि रखने वाले, इतिहास के तथ्यों के प्रति उदासीन भारतीय मन ने उसे जानने का प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप तुलसीदास जी की कोई भी प्रामाणिक जीवनी आज उपलब्ध नहीं है।

परवर्ती काल में विभिन्न लोगों द्वारा प्रचलित मान्यताओं की सहायता से रचित जीवनियों में परस्पर इतना मतभेद है कि किसी को भी प्रामाणिक मानना सम्भव नहीं है। और इसके साथ जुड़ गयी हैं किंवदंतियाँ, अस्वाभाविक अतिशयोक्तियाँ एवं चमत्कारों की घटनाएँ। बाल्यकाल में माता-पिता के स्नेह से वंचित वैष्णव साधु-सम्प्रदाय के संरक्षण में पालित, यौवन में पत्नी रत्नावली के प्रति अति मात्रा में अनुरक्त युवक का उसकी झिड़की से वैराग्यवान होकर संसार त्याग, गुरु कृपा, काशी गमन तथा साधना, भगवत् प्रेरणा से रामचरितमानस की रचना, हनुमान जी की कृपा से भगवान् राम के दर्शन अन्तिम काल में काशी में वास एवं वहीं शरीर त्याग, यह है संक्षेप में तुलसीदास की जीवनी। इतनी संक्षिप्त होते हुए भी उनके चरित्र को समझने के लिए ये घटनाएँ पर्याप्त हैं।

एक विचारक, एक जिज्ञासु के मन में प्रश्न उठ सकता है कि तुलसीदास जी की महानता का क्या रहस्य है? एक अत्यंत सामान्य, अनाथ, निर्धन, स्त्री-आसक्त युवक महाकवि कैसे बन गया? उसे समझने के लिए हमें यह जानना होगा कि कवि किसे कहते हैं—वास्तविक कवि कौन है? कवि शब्द का अर्थ 'सर्वज्ञ' होता है, तथा उपनिषद् एवं गीता में यह शब्द ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है :

'कविर्मनीषिः परिभूः स्वयंभूः—

ईशावास्योपनिषद् ८

तथा 'कवि पुराणमनुशासितार'

(गीता ८/९)

मंत्रद्रष्टा ऋषि भी कवि कहलाते हैं। क्योंकि अतीन्द्रिय सत्य की साक्षात् अनुभूति होने पर कविता का स्वतः स्फूर्त उद्‌भव होता है। उपनिषदों को उठाकर देखिए। मंत्रद्रष्टा ऋषियों के मुख से अन्तः प्रेरणा के दिव्य क्षणों में अनायास फूट पड़ने वाले उदात्त काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होगा। यथा:

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं,
नेभा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

अर्थात् वहाँ न सूर्य प्रकाशित है न चन्द्र व तारागण। वहाँ विद्युत भी नहीं चमकती, अग्नि की कौन कहे! उसके प्रकाशमान होते हुए ही सबकुछ प्रकाशित होता है। उसके प्रकाश से सबकुछ भासता है।

अथवा, ब्रह्म की महिमा को प्रकट करने की इस अभिनव शैली को ही देखिए :

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्यो पसेचनं क इत्या वेद यत्र सः॥

अर्थात् जिस ब्रह्म के ब्राह्मण क्षत्रिय ओदन (भात) हैं, तथा मृत्यु जिसका उपसेचन (शाकादि) है, वह जहाँ है, उसे कौन जान सकता है।

परमात्मा की विभिन्न अभिव्यक्तियों का यह सुन्दर वर्णन ही ले लीजिए :

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवति विश्वतोमुखः॥
नीलः पतंगो हरितो लोहिताक्षस्तडिदार्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत्व विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानिभुवनानि विश्वा॥

अर्थात् तुम स्त्री हो, तुम पुरुष हो, तुम कुमार हो, तुम्हीं कुमारी हो, तुम लाठी टेककर चलते वृद्ध हो, तुम ही विश्व में नाना रूप से जन्म लेते हो। (तुम ही) नीले रंग के हरे पंख के व लाल आँख वाले पक्षी हो, तुम ही विद्युत, ऋतु एवं समुद्र हुए हो। तुम अनादि होकर सर्वव्यापी रूप में विद्यमान हो जहाँ से समस्त भूवन एवं विश्व जन्मे हैं।

दस्यु रत्नाकर भी तीव्र संवेदना के एक क्षण में ही महाकवि बने थे और वाल्मीकि तथा तुलसी के जीवन में हमें कुछ सादृश्य भी दिखाई देता है। एक पूर्व जीवन में डाकू थे, तो दूसरे अत्यन्त स्त्री आसक्त। दोनों के जीवन में ही संसार तथा अपने प्रेम के पात्र से निराशा प्राप्त हुई थी तथा दोनों सत्संग एवं गुरु-कृपा से अपने प्रेम को भगवान् की ओर मोड़कर, महान् बन पाये थे। कुछ लोगों की तो यह भी मान्यता है कि तुलसीदास जी महाकवि वाल्मीकि के ही अवतार थे, जो रामकथा की कालोपयोगी व्याख्या करने के लिए पुनः आविर्भूत हुए थे।

वाल्मीकि की कथा तो सर्वविदित ही है। न जानें कितने निरीह, निरपराध मानवों की निर्मम हत्या करने वाले पाषाण हृदय दस्यु को जीवन का तीव्रतम आघात उस समय लगा जब कुछ साधुओं के कहने पर वह अपने परिवार के सदस्यों के पास यह जानने के लिये जाता है कि क्या वे उनके पाप के भागी होंगे। माता-पिता, पत्नी सभी यह कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं कि हमारा भरण-पोषण तुम्हारा कर्तव्य है, तुम्हारे कुकर्म में हम क्यों हाथ बँटावें। जिन लोगों के लिए वह ये जघन्य अपराध करता था, वे लोग ही उसके पाप के भागी नहीं होंगे। रत्नाकर की आँखें खुल जाती हैं। वे साधुओं के पास आकर अपने उद्धार का उपाय पूछते हैं। उनके उपदेशानुसार 'मरा' मंत्र का जप करते हैं। एक ही स्थान पर जप करते-करते उनके शरीर पर दीमकों ने एक वाल्मीक का निर्माण कर दिया, जिससे वे वाल्मीक कहलाये। अब वे दस्यु नहीं थे। वे एक महर्षि हो गये थे। एक बार वन में एक शिकारी ने प्रेम-क्रीड़ारत एक पक्षी युगल पर निशाना लगाकर एक को मार डाला—

जिससे बेचारा दूसरा पक्षी अपने मृत प्रिय की देह के चारों ओर आर्तनाद करता हुआ मँडराने लगा । यह देखकर ऋषि का हृदय करुणा से विचलित हो उठा तथा उनके कंठ से प्रथम कविता फूट पड़ी :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

लेकिन कविता सार्थक तभी हुई जब नारदजी के कथन पर उन्होंने राम कथा को महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया ।

तुलसीदासजी भी, एक अत्यन्त संवेदनशील व्यक्ति रहे होंगे । प्रत्येक मानव स्वाभाविक रूप से प्रेम देना तथा प्राप्त करना चाहता है । माता-पिता के प्रेम से वंचित अनाथ बालक तुलसी ने युवावस्था में उस प्रेम की पूर्ति पत्नी से करनी चाही होगी । और इसीलिए अपने समग्र हृदय से वे अपनी पत्नी रत्नावली से प्रेम करते थे लेकिन क्या मानव हृदय कभी मानवी प्रेम से संतुष्ट हो सकता है । सभी सांसारिक प्रेमों में कुछ-न-कुछ कटुता अप्रियता अवश्य रहती है । स्वार्थ गंधरहित पूर्ण निःस्वार्थ प्रेम संसार में दुर्लभ है । इस बात का अनुभव तुलसी को उस दिन हुआ जिस दिन घर लौटने पर उन्होंने अपनी पत्नी को वहाँ नहीं पाया—वह मायके चली गयी थी । क्षण मात्र के लिए भी विरह सहन करने में असमर्थ तुलसी उसी समय पत्नी से मिलने चल पड़े ।

ऐसा कहा जाता है कि उस समय वर्षाकाल था तथा मेघाच्छादित अंधेरी रात थी । नौका न मिलने पर तुलसीदासजी ने उफनती नदी को एक बहते हुए शव के सहारे पार किया । आधी रात को जब वे ससुराल पहुँचे तब घर के दरवाजे बन्द थे । बिल्ल में घुसते, दीवार से लटकते एक सांप के सहारे वे अपनी पत्नी के पास पहुँचे । शव के सहारे नदी पार करना, तथा सर्प को पकड़ कर ऊपर पहुँचना, कवि-कल्पना मात्र हो सकती है, लेकिन तुलसीदासजी की तत्कालीन मन स्थिति के सन्दर्भ में ये पूर्ण रूप से उपयुक्त हैं । ये दोनों मानो प्रेम के आवेग में सामाजिक विधि निषेध, तथा मृत्यु के भय की उनके द्वारा पूर्ण उपेक्षा के प्रतीक हैं । सामाजिक शिष्टता के अनुसार तो दिन को नौका की सहायता से नदी पार कर ससुराल पहुँचना उचित होता । फिर दीवार फांदकर अन्दर जाने के बदले, घर का दरवाजा खटखटाना चाहिए था । पर यह सब तुलसीदासजी ने नहीं किया ।

पत्नी से उन्होंने प्रेमपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की होगी । लेकिन उस बेचारी मानवी की अपनी सीमाएँ एवं सामाजिक मान्यताएँ थीं । उसे तो लग रहा था कि कल लोग क्या कहेंगे—पति को आसक्ति के लिए उसे कितने व्यंग सहने होंगे । अतः वह झिड़क कर कह देती है : 'इस हाड़-मांस के शरीर के प्रति तुम्हें इतनी आसक्ति है । इससे आधी भी यदि भगवान के लिए होती तो तुम मुक्त हो जाते । पत्नी की यह बात तो उसकी सुनी सुनायी बात थी वह तो केवल तुलसी को लज्जित करना चाहती थी । लेकिन जो प्रतिक्रिया हुई, उसकी उसे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी । अपने तीव्रतम प्रेमाकर्षण के ऐसे रूखे प्रतिदान की तुलसी को अपेक्षा नहीं थी । वे मर्माहत हो उठे । लगा सचमुच इस संसार में भगवान के अतिरिक्त अपना और कोई नहीं है । किसी दूसरी स्त्री की ओर भी उन्होंने अपना मन नहीं मोड़ा । वे अपने समग्र प्रेम को भगवान की ओर दिशा प्रदान करने में समर्थ हुए थे । यही है, तुलसी की सफलता का प्रथम रहस्य या सोपान ।

अगला कार्य जो तुलसीदासजी ने किया वह था, संसार त्याग कर संन्यासी होना । वे काशी चले गये तथा सद्गुरु से राममंत्र में दीक्षित हो भगवन्नाम जप की साधना करने लगे । अन्त में वे हनुमानजी की कृपा से भगवान राम के दर्शन पाकर धन्य हुए ।

तुलसीदासजी के जीवन की उपर्युक्त कतिपय घटनाओं का विश्लेषण करने पर हम उनके चरित्र की तीन विशेषताएँ देख पाते हैं । उनकी आसक्ति की तीव्रता, इस आसक्ति को पूर्ण रूप से भगवान की ओर मोड़ने की क्षमता तथा संसार से वैराग्य । श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि ईश्वर के लिए व्याकुल होने पर भगवान के दर्शन होते हैं । सती का पति के प्रति प्रेम, माता का सन्तान के प्रति प्रेम, विषयी का विषय के प्रति प्रेम—इन तीनों को मिलाकर भगवान के प्रति करने पर भगवान के दर्शन होते हैं । तुलसीदासजी का जीवन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । और यही है उनके कवित्व का, उनकी महानता का रहस्य । संसार से विमुख हो वे समग्र शक्ति, प्रेरणा एवं ज्ञान के अखण्ड स्रोत परमात्मा के साथ स्थायी सम्पर्क स्थापित करने में सफल हुए थे। श्रीरामकृष्ण की भाषा में जिस प्रकार अनाज के भंडार में एक व्यक्ति अनाज तौलकर बेचता जाता है, और दूसरा व्यक्ति पीछे से अनाज की राशि आगे ठेलता जाता है और उसे समाप्त नहीं होने देता उसी प्रकार जिस व्यक्ति ने परमात्मा से सम्पर्क स्थापित कर लिया है, उसकी ज्ञान-राशि कभी समाप्त नहीं होती, वह भगवान द्वारा निरन्तर पूरी होती रहती है । तुलसीदासजी भी अपनी महानकृतियों का श्रेय स्वयं नहीं लेते । वे स्वयं को अनादिकाल से चली आ रही, भगवान शिव द्वारा कही गयी रामकथा के आवृतिकार मात्र कहते हैं । अतः कोई भी व्यक्ति, यदि वह अहंकार एवं संसारासक्ति त्याग कर प्रेरणा, ज्ञान एवं शक्ति के अनन्त भांडार—परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित करे तो वह भी तुलसीदासजी की तरह महान हो सकता है । ☐

माँ सारदा-लौकिक और अलौकिक

–श्रीमती विनोदिनी कृष्ण, चंडीगढ़

जग-जननी करूणा रुपिणी श्री सारदा देवी युगावतार श्री रामकृष्ण की शक्ति के रूप में इस धरा पर अवतरित हुईं। उनके विषय में श्री रामकृष्ण कहते थे कि वे सरस्वती हैं, इस संसार में ज्ञान प्रदान करने आयी हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, वे साक्षात दुर्गा हैं। पापियों को पवित्र करने और दु:खियों को आशा देने आयीं हैं। श्री सारदा देवी ने स्वयं श्रीरामकृष्ण के भतीजे शिवराम को कहा कि वे काली हैं। श्रीरामकृष्ण ने श्री सारदा देवी की शोडषी पूजा की और माँ शारदा में इतनी शक्ति थी कि उन्होंने एक अवतार की पूजा को ग्रहण किया। वे लक्ष्मी थीं, इस धरा में सुख, आनन्द व धन-धान्य देने आयीं थी। वे माँ अन्नपूर्णा थीं उन्होंने अपने हाथों से सैकड़ों लोगों को भोजन बना कर खिलाया। जब सारदा छोटी थीं तब जयरामबाटी के आसपास के इलाकों में अकाल पड़ गया। माँ के घर में रोज खिचड़ी पकती और जो भी भूखा प्राणी आता उसे छोटी सी सारदामणि अपने हाथों से गर्म-गर्म खिचड़ी परोस कर देती और उसे पंखे से झलतीं ताकि वह शीघ्र ठण्डी हो जाये और भूखा प्राणी शीघ्र अपनी भूख मिटा पाये। वे महामाया थीं। उन्होंने माया से अपने असली स्वरूप को ढक लिया था मानो एक मोटी चादर ओढ़ ली हो ताकि किसी की भी अपवित्र दृष्टि उनके सौंदर्य पर न पड़े। उन्होंने माया से सबको मोह लिया। सब 'माँ, माँ' कहते परन्तु उनके असली स्वरूप को पहचान न पाते। उनके अन्दर एक विशाल आत्म-ज्ञान का सागर था परन्तु बाहर से वे एकदम शान्त थीं। श्रीरामकृष्ण जो कि एक अवतार थे, वे भी अपनी आध्यात्मिक भावदशा (Spiritual moods) को नियंत्रित नहीं कर पाते और अकसर समाधि में चले जाते परन्तु माँ सारदा का Complete Control था। उन्हें शायद समाधि अवस्था में केवल गोलाप माँ, योगिन माँ, और स्वामी योगानन्द ने ही देखा था। अन्दर से इतनी महान परन्तु बाहर से वे एक सीधी-सादी, भोली भाली, लजालु, साधरण, ग्रामीण स्त्री थीं। इस विश्व की राजराजेश्वरी एक गरीब स्त्री के रूप में नजर आयी जो घर का सब काम करती है। भोजन बनाती है, झाड़ू देती है, बरतन मलती है। धान कूटती है, और जिस स्थान पर बाहर से आये हुए भक्तजन भोजन करते उस स्थान को वे साफ करतीं। और जब कभी कोई भक्त बीमार पड़ जाता तो माँ घर-घर जातीं और थोड़ा-थोड़ा दूध इकट्ठा करके लातीं और अपने बीमार पुत्र को पिलातीं, और जब भक्तजन माँ से विदा लेते तो माँ की अश्रुधारा ही न रुकती, वे मार्ग पर खड़ी होकर बैलगाड़ी को निहारती रहतीं जब तक वे आँखों से ओझल न हो जाती। यह कैसा विचित्र प्रेम था ? यह सांसारिक प्रेम न था जो केवल अपने परिवार तक ही सीमित रहता है, यह आलौकिक दैवी प्रेम था जिसने अपने आंचल में समस्त संसार को समेट लिया था।

माँ के हृदय में जातपात का भेदभाव न था। उनके लिये हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, ईसाई विदेशी सब उनकी सन्तान थे। उन्होंने तो एक पागल को एक मूर्ख को, एक शराबी को और एक चोर कोभी अपनी कृपा का पात्र बनाया। माँ कहतीं यदि तुम्हारा बच्चा गंदा है, तो क्या तुम उसे फेंक दोगी ? उसे साफ करके अपनी गोद में ही तो बैठाओगी। वे सबकी माँ थीं, अच्छों और बुरोकी, अमीरों और गरीबों की, साधुओं और गृहस्थी की, संतो और पापियों की, इतना ही नहीं वे जीव-जन्तुओं और पक्षियों की भी माँ थीं। माँ कहती, डरो मत, दुखों का हौंसले और धैर्य के साथ सामना करो और यह कभी न भूलो कि तुम्हारी एक माँ है जिसकी कृपा दृष्टि सदा तुम पर है।

श्री सारदा देवी में साधारण और असाधारण विशेषताओं का सम्मिश्रण था। उस युग की एक साधारण ग्रामीण स्त्री की भाँति वह भी अपने पति और परिवार की सेवा करतीं, मन्दिर जातीं, तीर्थ यात्रा करतीं। अपनी मूर्ख भतीजी राधू के ऊपर अपना प्रेम निछावर करतीं और अतिथियों का आदर, सत्कार या सेवा करतीं। परन्तु उनमें असाधारण विशेषताएँ थीं। अपने भगवान स्वरूप पति के द्वारा पूजा जाना, अपने पति के आध्यात्मिक लक्ष्य को समझना और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अपने पति की सहायिका बनना। अपने पति की आध्यात्मिक सम्पत्ति की उत्तराधिकारी बनना। समस्त संसार की गुरु बनना, समस्त संसार द्वारा पूजा जाना समस्त संसार पर अपने प्रेम और कृपा की दृष्टि बिना भेदभाव करना और एक सिद्ध साध्वी पत्नी और माँ बनना।

५ साल की आयु में श्री सारदा देवी का विवाह हो गया और जीवन यात्रा के आरम्भ से ही वे श्रीरामकृष्ण के साथ जुड़ गयीं। जब वे १८ वर्ष की थीं तो उन्होंने सुना कि श्रीरामकृष्ण जो दक्षिणेश्वर में कड़ी साधना कर रहे थे, वे अपना मानसिक संतुलन खो बैठे हैं।

तब माँ सारदा अपने पिता के साथ दक्षिणेश्वर की यात्रा पर पैदल निकलीं। मार्ग में वे अपने साथियों से बिछड़ गयीं और एक भयानक डाकू जो कि चोरी करने आया था, माँ ने उसे अपने प्रेम और स्नेह से सदा के लिये अपना भक्त बना लिया। श्री सारदा देवी का एक स्पर्श एक दृष्टि और एक विचार नीच से नीच पुरुष को भी परिवर्तित कर देता।

श्री सारदा देवी जब देर रात को बिना सूचना दिये श्रीरामकृष्ण के कमरे में पहुँची तो ठाकुर ने उन्हें पूर्ण सम्मान दिया। परन्तु यह भी कहा 'माँ जगदम्बा ने मुझे दिखाया है कि वे हर स्त्री में वास करती हैं, इसलिये मैं हर स्त्री को माँ के रूप में देखता हूँ और तुमको भी क्या तुम मुझे इस संसार में ढकेलने के लिये आई हो ? श्री सारदा देवी जो साक्षात दुर्गा थीं बोली 'मैं केवल आपकी सहायिका बनने और आपकी सेवा करने आई हूँ। अपनी पवित्र पत्नी के स्वरूप में श्रीरामकृष्ण ने जगत की माँ जगदम्बा की शोडषी पूजा की और दोनों का समाधि में आध्यात्मिक मिलन हुआ और तबसे वे दो शरीर और एक आत्मा बने। श्रीरामकृष्ण ने अपनी समस्त आध्यात्मिक उपलब्धियों का फल माँ के चरणों में अर्पित किया। उन दोनों का अनोखा रिश्ता था। वे एक दूसरे को माँ काली समझते थे। श्रीरामकृष्ण कहते थे श्री सारदा देवी इतनी पवित्र थीं कि यदि वे इतनी पवित्र न होतीं तो शायद मैं हर समय इतना पवित्र न रह पाता। ठाकुर एक सिद्ध ब्रह्मचारी थे और माँ एक सिद्ध ब्रह्मचारिणी। जो विवाहित दम्पति साधना की राह पर चलना चाहते हैं उनके लिये ठाकुर और माँ का जीवन एक आदर्श है।

श्री सारदा देवी त्याग, सहनशीलता, धैर्य और सेवा की एक प्रतीक मूर्ति थीं। दक्षिणेश्वर में वे एक छोटे से कमरे में रहतीं जिसे नौबत खाना कहते थे। प्रातः ३ बजे उठकर स्नानादि करके वे घंटों जप ध्यान करतीं और फिर उस पिंजरे समान कमरे में चली जाती और सारा दिन वहीं व्यतीत करतीं। अपने पति का भोजन बनातीं, जो भक्तजन आते उनका भोजन बनाती, अपनी सास की सेवा करतीं जो उसी कमरे में रहती थीं और मन्दिर में माँ भवतारिणी के लिये सुन्दर मालाएँ बनातीं। लोग कहते, हमने सुना है वे यहाँ रहती हैं परन्तु कभी देखा नहीं। पास में ही श्रीरामकृष्ण का कमरा था जहाँ नित्य आध्यात्मिक लीलाएँ होतीं। ठाकुर मस्ती में नाचते गाते। माँ के कमरे में एक बांस की चटाई का पर्दा था जिसमें उन्होंने छेद कर लिया था। उसके सामने माँ घण्टों खड़ी होकर ठाकुर के कमरे का दृश्य निहारती रहतीं। श्री सारदा देवी के जीवन का आधार उनकी Life line थी श्रीरामकृष्ण के प्रति उनका प्रेम वे उनके पति थे, गुरु थे, भगवान थे, इष्ट थे। फिर ठाकुर ने उन्हें अनुमति दी कि वे दो बार प्रतिदिन उनका भोजन लेकर उनके कमरे में आयें। वे ठाकुर की पहली शिष्या थीं। ठाकुर ने उन्हें दैनिक और आध्यात्मिक ज्ञान के बारे में सम्पूर्ण शिक्षा दी और कहा इस संसार में लोग अन्धकार और अज्ञानता में कीड़े-मकोड़े की तरह जी रहे हैं, तुम्हें उन्हें उबारना है, और श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात ३४ वर्षों तक माँ ने यह ही किया, पापियों को पवित्र किया, दुखियों को आशा दी, अनगिनत को मन्त्र दीक्षा देकर उनका मार्ग दर्शन किया। जो विष ठाकुर के साधु भक्त हजम न कर पाते उसे माँ के पास भेज देते और माँ उन्हें दीक्षा दे देतीं। उनके पाप अपने सिर पर ले लेतीं। निरक्षर होती हुई भी माँ उच्च से उच्च अध्यात्मिक ज्ञान प्रदान कर सकती थीं। रामकृष्ण संघ की स्थापना के पीछे माँ सारदा की शक्ति थी। माँ ने रामकृष्ण संघ को धन-धान्य और समृद्धि से परिपूर्ण किया। जटिल से जटिल समस्या चाहे वह लौकिक या आध्यात्मिक होती, माँ उसका असानी से समाधान कर देतीं। जब स्वामी विवेकानन्द का विदेश जाना था तब वे संशय की स्थिति में डूबे हुए थे कि जायें या न जायें। उनकी स्थिति महाभारत युद्ध से पहले अर्जुन जैसी थी। तब माँ सारदा ने श्रीकृष्ण भगवान की भाँति आकर उनके संशय को छिन्न-भिन्न किया और उन्हें विदेश जाने की आज्ञा और अनुमति दी और आश्वासन दिया कि श्रीरामकृष्ण की कृपा सदैव उन पर रहेगी, और यह उस समय की बात है जब विदेश जाना अपने धर्म को भ्रष्ट करना माना जाता था। पिछले युग में रहते हुए भी श्री सारदा देवी एक आधुनिक समाजसेविका (Social worker) की तरह कहतीं 'कन्याओं को पढ़ाना चाहिये और यदि वे नहीं चाहें तो उनपर विवाह करने के लिये दबाव नहीं डालना चाहिये।' उस युग में एक ब्राह्मण विधवा दूसरी जाति की स्त्रियों के संग भोजन नहीं करती थी, पर माँ ने स्वामी विवेकानंद की विदेशी भक्त महिलाओं को अपनाया। उन्हें अपने साथ बिठा कर भोजन करवाया। श्रीरामकृष्ण को महासमाधि के पश्चात माँ सारदा ने बहुत दुःख झेले। आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि कई बार घर में नमक तक न होता। पर माँ ने अपने हाथ कभी किसी के आगे नही फैलाये इस बात का ज्ञान जब ठाकुर के भक्तों को हुआ तब माँ की देखरेख का भार स्वामी सारदानंद जी महाराज ने सम्भाला। माँ के परिवार में तीन भाई उनकी पत्नियाँ

और बेटियाँ थीं। ये सब संसारिक थे माँ को बहुत यातनाएँ देते, पैसों के लिये बहुत तंग करते। परिवार में कई लोग पागल थे। राधू और उसकी माँ पागलपन के विभिन्न स्तरों पर थीं। नलिनी बाहरी पवित्रता पर इतनी सनकी थी कि नित्य समस्याएँ उत्पन्न कर देतीं। परन्तु माँ सारदा ने यह सबकुछ हौसले और धैर्य के साथ सहा और इन सबका बोझ उठाया और अन्त तक अपनी जिम्मेदारी निभाई। श्री सारदादेवी का एक विशाल साम्राज्य था और वे इस विशाल साम्राज्य की संचालिका थीं। एक ओर तो यह संसारिक परिवार था और दूसरी ओर एक आध्यात्मिक परिवार था। जिसमें संन्यासी थे, ब्रह्मचारी थे, भक्त थे। बाहर से भी हजारों भक्त आते जिनमें गृहस्थ भक्त भी होते। माँ इन सबको आध्यात्मिक शिक्षा देतीं, इनकी समस्याएँ सुलझातीं, अनगिनित को मन्त्र दीक्षा देकर उनका मार्ग दर्शन करतीं। जो भी मुक्तिदायिनी माँ की शरण में आता उसे माँ अभय प्रदान करतीं, और साथ ही साथ इन सब के रहने की और खाने-पीने की व्यवस्था करतीं। कई बार बाहर से आये हुए भक्त भी पागल होते। एक बार एक भक्त ने प्रणाम करते समय माँ के पाँव को काट लिया ताकि उसकी गुरु उसे सदा याद रखें। श्री सारदा देवी का यह विशाल साम्राज्य किसी भी साम्राज्य से कम न था।

माँ कहती यह शरीर मिला है तो इस के साथ दुःख भी अवश्य झेलने पड़ेंगे। बड़े-बड़े अवतारों और संतों ने भी इस शरीर को पाकर अनेक दुःख झेले, और माँ का दुःखों से छुटकारा पाने का सूत्र (formula) था भगवान के नाम का जप करना। वे स्वयं प्रतिदिन एक लाख बार जप करतीं और इतनी कठिन परिस्थितियों के होते हुए भी सदा आनन्दमग्न रहतीं। माँ कहती मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो एक आनन्द से भरा हुआ कमरा मेरे हृदय में विराजमान है। श्री सारदा देवी ने हम सांसारिक लोगों को व्यावहारिक रूपसे (Practically) दिखा दिया कि इस संसार में कैसे रहना है। दुखों और समस्याओं को झेलते हुए एक शक्तिपूर्ण और आध्यात्मिक जीवन कैसे जीना है। माँ सारदा कहतीं यदि शान्ति चाहते हो, तो दूसरों के दोष न देखो, अपने दोष देखो, और उन्हें सुधारो और इस संसार में सब अपने हैं, सब में भगवान को देखो, और उनसे प्रेम करो।

कभी-कभी माँ को शक्ति की छोटी-सी झलक दिखाई दे जाती। एक बार एक शराबी बहुत बेदर्दी से अपनी पत्नी को पीट रहा था। क्यों कि उसने समय पर भोजन नहीं बनाया था। घूंघट की ओट में रहने वाली माँ, सदा धीमे स्वर में बात करने वाली माँ, बाहर निकल कर आयीं और ऊँचे स्वर में उसे रुकने को कहा, उनकी शक्ति के सम्मुख वह तत्काल रुक गया। जब भी कोई गलती करता तो माँ न तो उसे डाँटतीं और न ही सजा देतीं परन्तु प्रेम से सुधारतीं। सारदा माँ कहतीं जब कोई मुझे माँ कह कर पुकारता है तो मुझसे रहा नहीं जाता, मैं उसकी इच्छा शीघ्र पूर्ण कर देती हूँ। कहते हैं, माँ की शरण में जाने से मुक्ति आसानी से मिल जाती है। तो आइये, आज हमसब मिलकर जग जननी करुणा रूपिणी श्री सारदा देवी के चरण कमलों की वन्दना करें और उनसे भक्ति का वरदान माँगें।

❑

"हम यह निश्चित जानते हैं कि हम एक न एक दिन अवश्य मरेंगे और जब ऐसा है, तो फिर किसी सत्कार्य के लिए ही हम क्यों न मरें! हमें चाहिए कि हम अपने सारे कार्यों को जैसे खाना-पीना, सोना, उठना, बैठना आदि सभी–आत्मत्याग की ओर लगा दें। भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे क्या लाभ हुआ, यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की भलाई के लिए अर्पण न किया? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे भी कोई लाभ नहीं, यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को लगाकर आत्म-त्याग न किया। चूँकि सारा संसार एक है और तुम इसके एक अत्यन्त अकिंचन अंश हो, इसीलिए केवल इस तुच्छ स्वयं के अभ्युदयार्थ यत्न करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है कि तुम अपने करोड़ों भाइयों की सेवा करते रहो।

–स्वामी विवेकानन्द

कर्म-साधना

—डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण, पटना

मानवता के हित में जो दिन-रात साधना लीन है
ठाकुर उसको अपना उसके रहता सदा अधीन है

जो विवेक का दीप जला दलितों की सेवा है करता
गरलपान कर स्वयं दुखी के प्याले में अमृत भरता
जीव प्रेम के वशीभूत जो जन सेवा हित जीता है
दुख के मारों के दुख पर शीतल झरना सा ही झरता
यही कर्म-साधना समय जो रहता उसमें लीन है—ठाकुर

नारी है सम्मान योग्य यह बात समझ जो पाता है
कर सम्मानित मानवता वह सुख को गले लगाता है
कभी नहीं वह दिशाहीन हो सकता अपने जीवन में
शुद्ध आचरण के कारण वह कभी नहीं पछताता है
ऐसा मातृभक्त जीवन में कभी न रहता हीन है—ठाकुर

रामकृष्ण को पढ़े बिना वेदान्त भागवत क्या जाने
उनके सिद्धान्तों, को ही जो सबसे ऊपर पहचाने
इस रहस्य को जो समझे उसकी प्रतिभा का क्या कहना
न हो अखण्डित एकनिष्ठता इसके प्रति मन में ठाने
इस प्रभाव से पल में वह बन जाता प्रबल-प्रवीण है—ठाकुर

यह मेरा यह तेरा है इस ओछेपन का त्याग करे
ऐसा कर जो सदा सभी के जीवन में अनुराग भरे
भारतवासी होने का वह गर्व सदा पाले रखता
उस चट्टानी के आगे क्या कोई भी बाधा ठहरे
वह वाणी व्यक्तित्व-ओज से कभी न रहता क्षीण है—ठाकुर

अशुभ शक्तियों के विरुद्ध जो शुभ का करे प्रयोग सदा
सकल जगत कल्याण के लिये करता जो उद्योग सदा
नहीं नकारे आत्मशक्ति को खुद पर जो विश्वास करे
सच्चे सुख का अधिकारी उसका करता उपभोग सदा
उस ताकत से फिरतो वह रह पाए ना गमगीन है—ठाकुर

है विराट् मानव समूह के हित की जो बातें करता
उसकी पूजा के भावों से मन की मंजूषा भरता
उसको कार्यरूप में परिणत करने का संकल्प करे
तालठोक स्वीकार चुनौती उसके हित में जो लड़ता
बनता अन्धे की लाठी खुद रहता नयन-विहीन है

जो अनन्त शक्ति साहस से धैर्य बनाए रखता है
कर्त्तव्याकर्त्तम कर्म को जो दस बार परखता है
जीवन में पश्चात्तापों का कभी न अवसर देता जो
शुभ कर्मों के कारण फिरतो वह मीठा फल चखता है
अपने उज्ज्वल भावों में वह रहता सदा नवीन है।
ठाकुर उसको अपना उसके रहता सदा अधीन है।

❑

स्वामी विशुद्धानन्दजी के पत्र

(सारदा मठ की बंगला पत्रिका 'निबोधत' से ब्र० परिमुक्त चैतन्य द्वारा साभार अनूदित–सं०)

(१)

श्री रामकृष्ण आश्रम, मोराबादी पहाड़
राची, १९/७/५०

परम कल्याणीया माँ,

तुम्हारे लगातार दो पत्र यथा समय पाकर आनन्दित हुआ हूँ। तुमने लिखा है–"मेरे लड़के का जन्मदिन इत्यादि।" माँ, तुम्हारा उनके (प्रभुके) सिवा और कोई नहीं है। प्रभु का पुत्र, प्रभु ने ही उसको तुम्हारे पास पुत्ररूप में भेजा था और उन्होंने ही उसको अपने पास बुला लिया है। उनकी दी हुई चीज उन्होंने समयानुसार वापस ले ली। बगीचे के माली का केवल मालिक के प्रति कर्तव्यपरायण रहने के सिवा बगीचे की किसी भी चीज के ऊपर 'मेरा' कहने का अधिकार नहीं है। माँ, सब कुछ मालिक का ही समझना। कर्तव्यरूप से माली की किसी भी विषय में थोड़ी भी त्रुटि या कर्तव्यच्युत ना हो इसका सर्वदा लक्ष्य रखना होगा। श्री ठाकुरजी के चरणों में दृढ़ एवं अचल विश्वास रखकर और उन्हीं का एकमात्र अवलम्बन करके अर्थात् खूँटी पकड़ के चलने का अभ्यास करो। इसमें पतन की कोई सम्भावना नहीं है यह जानना। श्री श्री ठाकुरजी ने तुम्हारे पुत्र के रूप में जिसको तुम्हारे पास भेजा था, वो अभी उन्हीं की अभय एवं शान्ति रूपी कोख में विराजित हैं। इसलिए माँ, वो कितना भाग्यवान है, ऐसा सोचकर तो देखो ! श्रीठाकुरजी को काय-मनोवाक्य से पुकारो। उनकी प्रार्थना, उन्हीं का नाम, जप और ध्यान, उनका स्मरण-मनन इत्यादि यही सब साधना है। एवं सर्वोपरि, जीवन की सभी अवस्थाओं में उन्हीं को एकमात्र हृदय से अपना जानकर चलना होगा। यही हुआ उनको (प्रभु को) पकड़े रहने का मार्ग। इस पथ पर कुछ अग्रसर होने से देखोगी कि वे दौड़कर तुम्हारे पास आकर तुम्हारा हाथ पकड़ कर ले जाएँगे। श्री श्री ठाकुर कहते थे–"पुत्र जब पिता का हाथ पकड़ कर चलता है, तब वह सम्पूर्ण निरापद नहीं है, परन्तु जब पिता पुत्र का हाथ पकड़कर चलते हैं तब उसके पतन का कोई भय नहीं रहता है।" वे और भी कहते थे–" उनकी ओर एक डेग भी बढ़ाने से वे निन्यानवे कदम आगे बढ़ आते हैं। उन्होंने जब तुम्हें आश्रय दिया है तो भय किस बात का------।"

मेरा ये वृद्ध शरीर श्री श्री ठाकुर की कृपा से एक प्रकार चल रहा है। तुम सभी मेरा आन्तरिक स्नेहाशिष जानना।

इति
चिरशुभानुध्यायी विशुद्धानन्द

(२)

राँची, ३०/२२/५०

परम कल्याणीया माँ,

तुम्हारा पत्र पाकर विशेष आनन्दित हुआ। चाहे जहाँ कहीं भी क्यों न रहो, उनको (प्रभु को) प्राणपण से पुकारना होगा। प्रभु के शरणागत होकर रहने से किसी भी प्रकार के भय का कारण नहीं रहता। माँ, यह जानना कि उनके स्मरण-मनन में दिन व्यतीत कर पाने से ही मंगल है, अन्यथा और किसी में भी मंगल नहीं है। जब उनके पास आना हुआ है तब देह-मन-प्राण उनके चरणों में अर्पण करके चिर शान्ति लाभ की अधिकारिणी बनो। ऐसा कर पाने से और कोई चिन्ता नहीं रहेगी। सार बात है कि सम्पूर्ण मन से उनका (प्रभु का) होना पड़ेगा। 'तुम मेरे, मैं सदैव तुम्हारा।' सर्वदा मन और मुख एक करके उनके निकट प्रार्थना करना एवं प्रार्थनानुसार यथासाध्य कार्य करने का प्रयत्न करना। इस तरह कर पाने से वे कृपा करेंगे। उनकी दया तो है ही–हम समझें या न समझें।

माँ, कभी भी स्वयं को दुर्बल मत समझना। यह सर्वदा याद रखना कि तुम प्रभु के चरणों में अर्पित हो। 'काली का भक्त जीवन्मुक्त नित्यानन्दमय।' उनके आश्रित लोगों को कोई भय नहीं है–इस पर विश्वास कर स्वयं को इसमें प्रतिष्ठित करना होगा। तुम सर्वदा उन्हें (प्रभु को) पकड़ कर चलने का अभ्यास करना बाद में समयानुसार वे आकर तुम्हें गोद में उठा लेंगे। माँ, यह समझना कि उनकी कृपा के बिना सभी लोग असहाय हैं।

उनकी कृपा से मेरा शरीर एक प्रकार से चल रहा है। मेरा आन्तरिक स्नेहाशिष जानना एवं घर के अन्यान्य लोगों को भी कहना। आज यहीं तक।

इति
चिरशुभानुध्यायी
तुम्हारा महाराज

(३)

राँची, ११/८/५०

परम कल्याणीया माँ,

तुम्हारा पत्र पाकर समाचार से अवगत हुआ । श्री वृन्दावन से तुम्हारी तुलसी की माला आई है । मैंने उसे गंगाजल से स्नान कराकर, जप करके एवं श्री श्री ठाकुर के पादपदमों में स्पर्श करा दिया है और आज पार्सल से रैजिस्ट्री करके भेज दिया है । अब तुम्हें जप करने में कोई असुविधा नहीं होगी । पार्सल के भीतर कागज के मोड़ में माला के चार दाने भेज रहा हूँ उसे अपने पास रखना और भविष्य में आवश्यकता होने से व्यवहार करना ।

नाम और नामी में कोई भेद-दृष्टि न रखकर जप का अभ्यास करना । नामी हैं तुम्हारे इष्ट भगवान श्रीरामकृष्ण । जब कभी तुम उनका नामः स्मरण करना तब नाम के साथ उनके रूप का चिन्तन करना । नाम और रूप का अविच्छेद्य सम्बन्ध है । नाम के साथ रूप का ध्यान करना आवश्यक है । देह को उनका देवालय समझना, इस देवालय के अन्दर में 'हृदय' उनका गर्भमन्दिर है । प्रभु को इस हृदय-मन्दिर में एक द्वादशदल कमल के ऊपर प्रतिष्ठित करके, जप के समय उनकी ज्योतिर्मयी मूर्ति का ध्यान करने का अभ्यास करना ।

सार बात है, अपने मानसपटल पर उनकी ज्योतिर्मयी मूर्ति को अंकित करके उसी का हृदय में चिन्तन करना । जप और उनका रूप-चिन्तन एक साथ होना चाहिए। अभ्यास करते-करते क्रमशः यह सुगम हो जाएगा । उनके प्रति अनुराग में जितनी ही वृद्धि होगी उतनी ही यह सब साधना सहज हो जाएगी ।

मेरा आन्तरिक स्नेहाशिष जाना । आज यहीं तक ।

इति

चिरशुभानुध्यायी

विशुद्धानन्द

❑

सच्चा संन्यासी

सामान्य संन्यासी संसार त्याग देता है, बाहर निकल कर भगवान् का चिन्तन करता है । सच्चा संन्यासी तो संसार में ही रहता है; पर उसका बनकर नहीं । जो आत्म-निग्रह करते हैं, जंगल में रहते हैं और अतृप्त वासनाओं की जुगाली करते रहते हैं, वे सच्चे संन्यासी नहीं है । जीवन-संग्राम के मध्य डटे रहो । सुप्तावस्था में अथवा एक गुफा के भीतर तो कोई भी शान्त रह सकता है । कर्म के आवर्त और उन्मादन के बीच दृढ़ रहो और केन्द्र तक पहुँचो और यदि तुम केन्द्र पा गये तो फिर तुम्हें कोई विचलित नहीं कर सकता ।

–स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में आध्यात्मिक एवं युवा शिविर

छपरा : स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में विगत १५ अगस्त को प्रातः ९ बजे से १२ बजे मध्याह्न तक आध्यात्मिक शिविर तथा संध्या ४.३० से ६.३० बजे तक युवा शिविर का आयोजन किया गया। रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के सचिव स्वामी शशांकानन्द दोनों शिविरों के मुख्य वक्ता थे।

आध्यात्मिक शिविर का आरम्भ आश्रम के साधुओं के द्वारा वेद पाठ से हुआ। सामूहिक ध्यान, गीता-पाठ एवं 'माँ की बातें' पुस्तक पाठ के उपरान्त अल्पाहार विराम, भजन और आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्द द्वारा ध्यान, धर्म और साधना पुस्तक के कुछ अंशों का पारायण किया गया। तदुपरान्त 'श्री रामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द की हमारे दैनिक जीवन में भूमिका' विषय पर स्वामी शशांकनन्द ने भावपूर्ण प्रवचन दिया। उन्होंने कहा कि हमारे दैनिक जीवन और धर्म में खाई हो जाने के कारण बड़ी विपत्ति आ गयी है। हम प्रवचन सुनकर और मन्दिर जाकर ही धर्म की इति श्री समझ लेते हैं। घर में धर्म नहीं करते। हम तिलक लगाकर माला पहन कर ही अपने को धार्मिक मान लेते हैं। धर्म और मन्दिर हमारे जीवन में नहीं उतरे। जीवन और धर्म के बीच की इसी खाई को पाटने श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द का आगमन हुआ था। धर्म जीवन है। धर्म होने पर जीवन में परिवर्तन नहीं हुआ तो हम धार्मिक नहीं हुए। ठाकुर, माँ और स्वामीजी धर्म क्षेत्र के क्रमशः जेनरेटर, विद्युत शक्ति और तार हैं। तीनों के रहने पर ही धर्म का प्रकाश होता है।

सायंकालीन युवा शिविर का उद्घाटन छपरा के विधायक सह नगर विकास एवं स्वास्थ्य राज्य मंत्री, माननीय उदित राय ने किया। उन्होंने आश्रम के अन्तर्पथ के निर्माण के लिए अपनी ओर से १ लाख रुपये देने की भी घोषणा की। स्वामी शशांकानन्द नेप्रवचनों से चरित्रवान, सत्य निष्ठ, सबल और राष्ट्र-भक्त होने की आवश्यकता बतायी। उन्होंने कहा कि स्वामी विवेकानन्द युवा शक्ति के आदर्श प्रेरणा स्रोत हैं।

दोनों शिविरों में डॉ० केदारनाथ लाभ ने आगत अतिथियों का स्वागत किया तथा डॉ० नागेश्वर प्र० मिश्र ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

इस अवसर पर आश्रम में बने नव अन्तर्पथ का फीता काटकर उद्घाटन भी नगर राज्य मंत्री उदितराय ने किया।

रायपुरा उच्च विद्यालय एवं श्रीकृष्ण उच्च विद्यालय केवानी में १६ अगस्त को छात्रों-शिक्षकों की सभा को भी स्वामी शशांकानन्द ने सम्बोधित किया। रायपुरा की सभा में श्रीमती किरण बाला ने धन्यवाद दिया। केवानी की सभा में श्री सुशील शर्मा ने आगत-स्वागत किया तथा डॉ० रामानन्द शर्मा ने धन्यवाद ज्ञापन किया। रायपुरा की सभा के आयोजन में श्रीमधुकर लाल कर्ण तथा केवानी की सभा के आयोजन में श्री सुशील शर्मा, डॉ० भूषण शर्मा, श्रीमती सावित्री शर्मा आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

१७ अगस्त को डुमरी मिड्ल स्कूल में आयोजित छात्र-सभा को भी स्वामी शशांकानन्द जीने सम्बोधित किया। तपती धूप में भी बड़ी संख्या में श्रोतागण उपस्थित थे। इस सभा के आयोजन में श्री जगन्नाथ लाल ने भरपूर परिश्रम किया था। सभी सभाओं के प्रेरक स्वामी मुनीश्वरानन्द जी इन सभाओं में स्वयं उपस्थित थे। सर्वत्र पुस्तक प्रदर्शनी एवं विवेकानन्द चित्र प्रदर्शनी लगी।

इस प्रकार श्री रामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामीजी के विचारों का प्रचार-प्रसार यहाँ के गाँवों में किया गया। ब्र० परिमुक्त चैतन्य, श्रीमधुकर लाल कर्ण, श्री बब्बन सिंह, श्री अजय कुमार दास आदि ने पुस्तक प्रदर्शनी में योगदान किया। डॉ० नागेश्वर प्र० मिश्र, श्री ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा आदि एकाधिक सभाओं में उपस्थित थे। पटना से भी कई भक्तों ने आकर शिविरों में भाग लिया। ❑

आध्यात्मिक शिविर

बंगलोर : यहाँ रामकृष्ण मठ के तत्वावधान में 15 जुलाई को स्वामी रामकृष्णानन्द जयन्ती समारोह एवं 25 जुलाई को आध्यात्मिक शिविर-सह-भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया ।

विवेकानन्द तपोवनम् का उद्घाटन

हैदराबाद : यहाँ रामकृष्ण मठ के तत्वावधान में अत्यन्त मनोरम पुष्पोद्यान विवेकानन्द तपोवनम् का उद्घाटन समारोह दो जुलाई को सम्पन्न हुआ । इस पुष्पोद्यान में प्राकृतिक चट्टान पर फाइवर ग्लास निर्मित स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा जल फव्वारा के बीच स्थापित की गयी है । यह प्रतिमा श्री तलारी अनन्त बाबु गारू द्वारा अपनी सहधर्मिणी की स्मृति में भेंटस्वरूप प्रदान की गयी है । तपोवनम् का उद्घाटन आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ० वाई० एस० राजेश्वरी रेड्डी गारू ने किया ।

आदिवासियों की सेवा के लिए विवेकानन्द पदक

कोलकाता : स्थानीय रामकृष्ण मिशन इंस्टीटयूट ऑफ कल्चर प्रांगण में 13 जुलाई को समारोह आयोजित कर बंगलोर के डॉ० एच० सुदर्शन को बी० आर० हिल्स, कर्नाटक के आदिवासियों के उन्नयन में उनके मूल्यवान योगदान के लिए विवेकानन्द पदक से सम्मानित किया गया । रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष पूज्ययाद श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज ने समारोह की अध्यक्षता की एवं डॉ० सुदर्शन को पदक एवं प्रशस्त्रि पत्र प्रदान किया ।

स्वामी रामकृष्णानन्द जयन्ती

चेन्नई : यहाँ श्रीरामकृष्ण मठ प्रांगण में 15 जुलाई को स्वामी रामकृष्णानन्द जयन्ती अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। जयन्ती अनुष्ठान, मंगल आरती, भजन गान, विशेष पूजा से प्रारंभ हुआ । इस अवसर पर विष्णु सहस्त्रनाम पाठ, पुष्प अर्चना तथा मठ के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गौतमानन्दजी महाराज एवं श्रीमत् स्वामी विमुर्तानन्दजी महाराज के प्रवचन आदि सम्पन्न हुए ।

विद्यार्थी होम

यहाँ टी० नगर स्थित रामकृष्ण मिशन आरम प्रांगण में ४ जुलाई को विद्यार्थी होम सम्पन्न हुआ । इस अनुष्ठान में आश्रम द्वारा संचालित स्कूलों के विद्यार्थियों एवं छात्रावास के अन्तेवासियों के अतिरिक्त अन्यान्य भक्तों एवं श्रद्धालुओं ने भाग लिया ।

पाँच दिवसीय माँ सारदा जयन्ती समारोह सम्पन्न

मनसाद्वीप (२.४ परगना) : यहाँ रामकृष्ण मिशन आश्रम के त्वावधान में श्री श्री सारदा की १५० वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में २९ जुलाई को चार दिवसीय समारोह सम्पन्न हुआ । इस दौरान रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के सहायक सचिव श्रीमत् स्वामी शिवमयानन्दजी महाराज ने आश्रम प्रांगण में सामुदायिक सभा भवन-सह-बाढ़ केन्द्र का उद्घाटन किया । इसके अतिरिक्त माँ सारदा जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया । विद्यार्थियों के लिए निबन्ध प्रतियोगिता एवं चित्रांकन प्रतियोगिता भी सम्पन्न हुई जिसमें स्थानीय विद्यालयों के छात्र-छात्राओं ने भाग लिया ।

विद्यालय भवन का शिलान्यास

विजयवाड़ा : यहाँ सीतानगरम् में रामकृष्ण मिशन सकूल का शिलान्यास १५ जुलाई को रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के सहायक सचिव श्रीमत् स्वामी सुहितानन्द जी महाराज के करकमलों द्वारा पूजा, होम एवं भजन तथा जनसभा आदि कार्यक्रमों के बीच सम्पन्न हुआ ।

पूज्यपाद स्वामी गीतानन्दजी का राँची आगमन

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गीतानन्दजी महाराज आगामी २१ सितम्बर को मोराबादी स्थित आश्रम पधार रहे हैं । वे आश्रम में अपने प्रवासकाल के दौरान २२, २३ एवं २५ सितम्बर को आध्यात्मिक पिपासुओं को दीक्षा प्रदान करेंगे । इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए आश्रम कार्यालय से सम्पर्क किया जा सकता है ।

❑

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

नम्र निवेदन

प्रिय, भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जो पिछले ७४ वर्षों से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेना' को उद्देश्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित बड़ा मन्दिर का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं–

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	११७'×४८'
मन्दिर की ऊँचाई	६७'
गर्भ-मन्दिर (पूजागृह)	१८'-६''×१८'-६''
उपासना कक्ष (५०० भक्तों के बैठने के लिये)	६७'×४०'
दोनों ओर के बरामदे	६७'×४'
मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन	९१'-६''×५१

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन-साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित–

कृपया ध्यान दें–

दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा रामकृष्ण मठ, नागपुर के नाम पर भेजे। दान की राशि आयकर की धारा ८०-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

प्रभु की सेवा में,

(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)

अध्यक्ष

रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४० ०१२

फोन : २५२३४२२, २५३२६९०, फैक्स : २५३७०४२

ई.मेल : rkmath@nagpur.dot.net.in

डाक पंजीयित संख्या – सी.एच.पी. १४-८३ CHP/P(N)/-14/02

हमारा हिन्दी प्रकाशन

शिवानन्द स्मृतिसंग्रह

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के अंतरंग पार्षद
स्वामी शिवानन्दजी महाराज के संस्मरण

तीन खण्डों में

प्रत्येक खण्ड का मूल्य रु. ५०.००

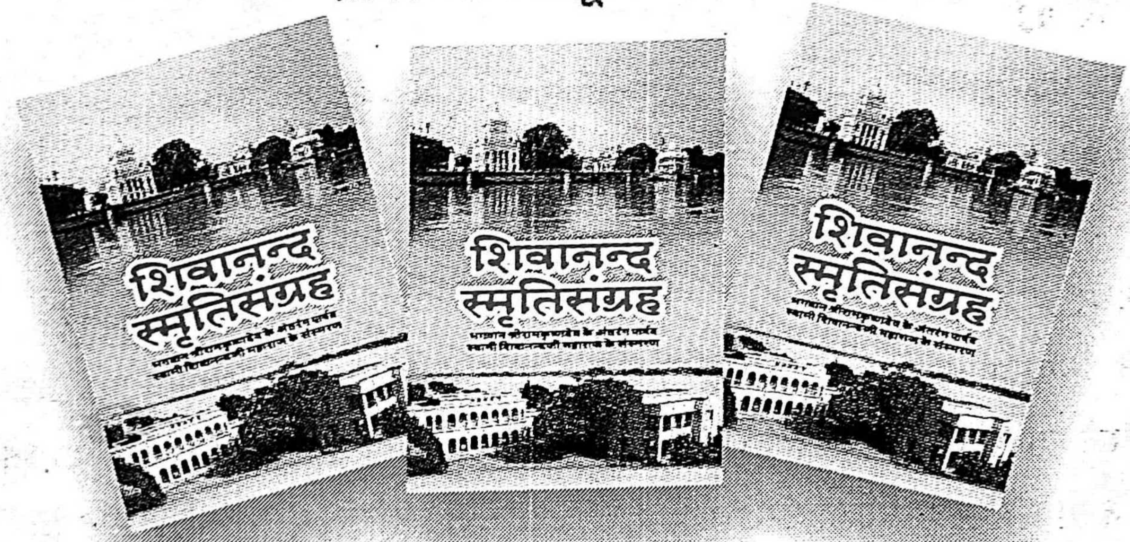

तत्त्वज्ञ महापुरुषों की वाणी और स्मृति त्रितापदग्ध मनुष्यों के जीवन-मार्ग की अमूल्य सम्पत्ति है। आत्मज्ञ पुरुषों के चरणों में बैठने का सौभाग्य अपरिमित पुण्यों के फलस्वरूप ही मिलता है। ऐसे ही महानुभावों ने इस ग्रन्थ के लिए अपने पवित्र स्मृति से विभिन्न प्रबन्ध लिखे हैं। यह ग्रन्थ संसार-ताप से तप्त मनुष्यमात्र के हृदय में शान्ति, आशा और उद्दीपन जागृत करनेवाला है।

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।

मुद्रक : वृषाली ऑफसेट, नागपुर-१८